

# महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

स्थापत्य वेद विभाग



महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय की विद्यावारिधि  
(पी एच डी) उपाधि हेतु प्रस्तुत  
शोध - प्रबन्ध

वर्ष - २००२-३

-: शीर्षक :-

महर्षि स्थापत्यवेद एवं चेतना विज्ञान का अन्तः संबंध  
एक विवेचन

शोध निर्देशक

डॉ. ए. एन. पटेल

प्रोफेसर

सिविल इंजीनियरिंग

गो.से.इ.ऑफ. टेक्ना. एण्ड साइंसेस

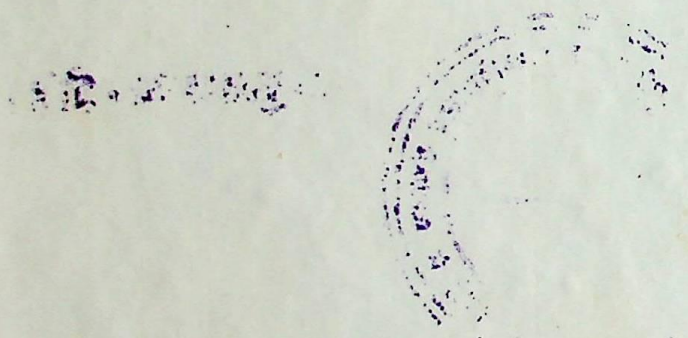
इन्दौर (म.प्र.)

शोधकर्ता

निकेतन आनन्द गौड़

**महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय**  
(इन्दौर परिसर)  
इन्दौर















# महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

स्थापत्य वेद विभाग



महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय की विद्यावारिधि  
(पी एच डी) उपाधि हेतु प्रस्तुत  
शोध - प्रबन्ध

वर्ष - २००२-३

-: शीर्षक :-

महर्षि स्थापत्यवेद एवं चेतना विज्ञान का अन्तः संबंध  
एक विवेचन

शोध निर्देशक

डॉ. ए. एन. पटेल

प्रोफेसर

सिविल इंजीनियरिंग

गो.से.इ.ऑफ. टेक्ना. एण्ड साइंसेस

इन्दौर (म.प्र.)

शोधकर्ता

निकेतन आनन्द गौड़

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय  
(इन्दौर परिसर)  
इन्दौर





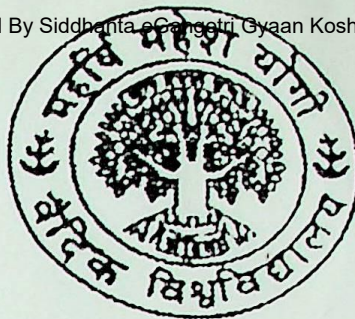


परम पूज्यनीय  
महर्षि महेश योगी जी  
के चरणों में  
सादर समर्पित









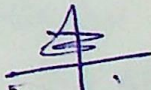
## महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय-इंदौर परिसर, इंदौर

### घोषणा-पत्र

मैं निकेतन आनन्द गौड़ घोषणा करता हूँ कि 'महर्षि स्थापत्य वेद एवं चेतना विज्ञान का अन्तः संबंध-एक विवेचन' शीर्षक पर प्रस्तुत शोध महर्षि स्थापत्य वेद (विभाग) के अन्तर्गत किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में किये गये समस्त कार्य एवं सर्वेक्षण मौलिक हैं। मेरी जानकारी के अनुसार प्रस्तुत शोध प्रबंध का कोई भाग ऐसा नहीं है जो बिना उचित दृष्टांत के प्रस्तुत किया गया है।

दिनांक: 14-12-02

स्थान : इंदौर

  
निकेतन आनन्द गौड़  
शोधार्थी

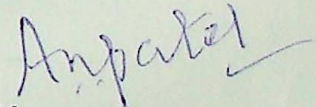






## शोध निर्देशक का प्रमाण पत्र

मैं प्रमाणित करता हूँ कि इस शोध प्रबन्ध में नये तथ्यों का अविष्कार किया जाता है, तथ्यों अथवा सिद्धान्तों का पर्यालोचन नई दृष्टि से किया गया है, तथा इस शोध प्रबन्ध की भाषा शैली सन्तोषजनक और प्रकाशन के योग्य है।



डॉ. ए. एन. पटेल  
प्रोफेसर

सिविल इंजीनियरिंग  
गो.से.इ.ऑफ. टेक्ना. एण्ड साइंसेस  
इन्दौर (म.प्र.)







महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय  
महर्षि स्थापत्य वेद विद्या वारिधि हेतु प्रस्तुत

:: शोध प्रबन्ध ::

:: विषय ::

महर्षि स्थापत्य वेद व चेतना विज्ञान का अंतःसम्बन्ध - एक विवेचन

-विषय- सूची -

खण्ड - 1

=====

- भूमिका
- विषय प्रवेश
- महर्षि स्थापत्य वेद की परिभाषा व  
स्थापत्यवेद का वर्गीकरण
- चेतना विज्ञान परिचय

खण्ड - 2

=====

वैदिक वांगमय वेद विज्ञान का वर्गीकरण -

- वेद
- वेदांग
- उपांग
- ब्राह्मण



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
सुखं हि जगतामस्तु तव प्रसादात्

॥ ॐ नमो भगवते ॥

॥ ॐ नमो ॥

सुखं हि जगतामस्तु तव प्रसादात्

- ॐ नमो -

॥ ॐ नमो ॥

सुखं हि

ॐ नमो

ॐ नमो भगवते

सुखं हि जगतामस्तु

ॐ नमो भगवते

॥ ॐ नमो ॥

- ॐ नमो भगवते ॥

ॐ

ॐ नमो

ॐ नमो

ॐ नमो



खण्ड - 3

=====

मानवीय शारीरिक संरचना - चेतना के संदर्भ में

=====

- शरीर के विभिन्न अंग चेतना के संदर्भ में
- अंगों की चेतना विषयक संज्ञाएं :
- वास्तु पुरुष के विभिन्न अंग
- वास्तु पुरुष के विभिन्न अंगों पर स्थापित देवताओं का परिचय
- देवताओं का शारीरिक चेतना से अंतर्सम्बन्ध
- गुणों से अन्तर्सम्बन्ध

खण्ड - 4

=====

- वास्तु पुरुष की क्रियात्मकता
- विभिन्न अंगों, मर्मों, वंशों, नाड़ियों आदि की उपयोगिता
- मानवीय शारीरिक रचना के गुणों का उपयोग
- स्थापत्य वेद के मूल सिद्धांतों पर आधारित निर्माण कार्य में वास्तु पुरुषांगों व चेतना विज्ञान के गुणों के अंतर्सम्बन्धों का उपयोगात्मक विवेचन
- उपसंहार







परम पुरुषोत्तम महर्षि महेश योगी जी के आशुतम पर आदेशित हुए  
 जब जिसने वैश्वनाथ के वैदिक परम्परा के जीवन मूल्यों के संसार में विविध विधा  
 पिता स्व. श्री वैश्वनाथ जी के आता श्रीमती सदा मोहि ने, जो स्व. ने सुवि व  
 पिता के संस्मरण को पूरा किया - जो आकाशका के विर - जो अनेकानेक मन्त्रों को  
 सबसे महापूर्ण आवश्यकता है - जीवन व समाज के प्रत्येक क्षेत्र को अपने वैदिक वाग्व्या  
 के शास्त्र सत्य व विषयों की वैदिक व्याख्या तथा जो कुर्वाणों को भी ।

### :: खण्ड - 1 ::

- उस संस्था की निम्नलिखित कार्यवाही करने में सहयोग देने वाली प्रत्येक
- भूमिका
  - विषय प्रवेश
  - महर्षि स्थापत्य वेद की परिभाषा व स्थापत्यवेद का वर्गीकरण
  - चेतना विज्ञान परिचय

संसार है जो संसार में है, जिसमें जीवन के संसार का विषय  
 महर्षिजी व महर्षिजी का अन्तिम लक्ष्य है, जिसमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र  
 समाज में जो सबको जो शास्त्र चेतना की सत्ता में स्थित करने में सहयोग किया,  
 जिसमें जीवन की सत्ता है, जिसमें सर्वोच्च वैदिक शास्त्र सत्य का स्थापना है ।

परिवार के अन्तिम लक्ष्य में, आकाश परमात्मता की,  
 व जो सबको शास्त्र व विद्वत्शास्त्र के सुखदायी है, प्रत्येक शास्त्र की जो  
 अपनी वैदिक व विद्वत्शास्त्र के सत्य लक्ष्यविषयों को अपने लक्ष्य में लाने ।







परम पूज्यनीय महर्षि महेश योगी जी के आह्वान पर आंदोलित हुआ मन जिसको शैशवकाल से वैदिक परम्परा के जीवन मूल्यों के संस्कार से सिंचित किया पिता स्व. श्री देवानन्द गौड़ व माता श्रीमती क्षमा गौड़ ने, उस मन ने बुद्धि व चित्त के संकल्प को दृढ़ किया - उस आवश्यकता के लिए - जो समकालीन समाज की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है - जीवन व समाज के प्रत्येक क्षेत्र की अर्थात् वैदिक वागमय के शाश्वत सत्य व नियमों की वैज्ञानिक व्याख्या तथा उसे पुनर्स्थापित करने की ।

उस संकल्प की निरंतरता को बनाए रखने में सहयोग देने वाली प्रत्येक दृश्य व अदृश्य शक्ति, माध्यम तथा निमित्तों का आभार है, जिनमें जन्म से अब तक के अध्ययन, चिंतन, मनन, प्रत्येक शब्द, विचार तथा उद्देश्य व उसके लिए उचित वातावरण देने वाले गुरुओं, माता, पिता, भाई-बहन, परिवार के समस्त सदस्य, मित्र व सहयोगी शामिल हैं ।

आभार है इस शोधकर्ता के निमित्त शरीर के परिवार का जिसमें सहभागिनी व संततियों का अप्रतिम सहयोग है, जिन्होंने आज के परिवेश की प्रत्येक माया से परे रहकर उसे शाश्वत चेतना की सत्ता में स्थित रहने में सहयोग किया, जिससे संभव हो सका है, किसी सार्वभौमिक शाश्वत सत्य का साक्षात्कार ।

परिवार के वरिष्ठतम् स्वामी सत्यानंद जी, आचार्य परमानंद जी, व श्री लक्ष्मीकांत वर्मा व विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. आद्या प्रसाद मिश्र जी को उनकी प्रेरणा व विश्वविद्यालय के समस्त सहयोगियों को उनके सहयोग हेतु आभार ।







:: भूमिका ::  
-----

वेद शब्द का निर्माण "विद्" धातु से होता है, जिसका अर्थ होता है ज्ञान । वेद अर्थात् ज्ञान । अनादि अथवा निर्गुण निराकार से व्यक्त सगुण साकार व पुनः पूर्ण ब्रह्म तक मोक्ष तक की उपलब्धि के ज्ञान विज्ञान की प्रक्रिया का विराट ज्ञान वैदिक वांग्मय में निहित है । प्रकृति के समस्त नियमों का वर्णन वैदिक वांग्मय में विभिन्न स्थाओं, विशेषण व क्रिया विशेषण आदि के साकेतिक रूप में मिलता है ।

सायन भी इस मत का अपने ऋग्भाष्य में प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं -

यस्य निः श्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत,  
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ॥

जिस परमात्मा के वेद निःश्वास के समान हैं और जिसने वेदों से सारे संसार का निर्माण किया उस विद्या के सागर परमात्मा को प्रणाम है ।

अर्थात् सारे विश्व ब्रम्हांड के निर्माण के सूत्र वेदों में वर्णित हैं । उन महत्त्वपूर्ण प्रकृति के सिद्धान्तों व गुणों को जानना स्थापत्य वेद के अनुसार निर्माण करने के लिए भी अत्यावश्यक है ।

जैसे ऋग्वेद में अग्नि की स्तुति के कई मन्त्र मिलते हैं यह अग्नि प्रकृति की मुख्य शक्तियों में से एक है, जो ब्राह्म रूप से सूर्य के रूप में पृथ्वी पर जीवन का आधार है, वही शरीर में प्राणों के संचार के लिए आवश्यक ऊष्मा उत्पन्न रखती है। वहीं वनस्पतियों को प्रकाश द्वारा प्रकाश संश्लेषण कराकर वनस्पतियों के भोजन निर्माण में सहयोग देती है । अतः अग्नि की स्तुति प्रकृति की उस मूलभूत शक्ति की स्तुति है, जो जीवन के लिए अत्यावश्यक तत्त्व है ।







जैसा कि ऋग्वेद के द्वितीय मंडल की ऋचा से स्पष्ट है ।

त्वमग्नि इन्द्रो वृषभःसतामसि

त्वं विष्णु रुरुगायो नमस्यः

त्वं ब्रह्मा रवि चिदब्रह्मपत्पते

त्वं विधर्तः सचर्षे पुरंध्या । 2/1/3 ।।

अर्थात् यह अग्नि सज्जनों में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण इन्द्र है । यह देवों में सर्वाधिक ऐश्वर्यवान होने के कारण इन्द्र है ।

उरुगाय सर्वव्यापक होने से विष्णु है । यही सबसे बृहत् होने के कारण ब्रह्मा है और नाना तरह की बुद्धियों से युक्त होने के कारण मेधावी है । व्रतों को धारण करके उनका पालन करने वाला होने के कारण "वरुण" है । सज्जनों का पालन करने वाला होने के कारण "अर्यमा" है ।

आदित्यासः आस्य - यह अग्नि देवों का मुख है । यज्ञाग्नि में डाली गई आहुति आदित्य में जाती है । अथवा अग्नि में डाली गई हवि देवों के पास पहुँचती है । देवगण इसी अग्नि का भक्षण करते हैं । इसलिये अग्नि को देवों का मुख बताया है ।

विभिन्न देवताओं जो कि विभिन्न गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं, इन्हीं देवताओं की स्थाओं का प्रयोग स्थापत्य वेद वास्तु शास्त्र के आधार पर किसी भी निर्माण के पहले उसके लिये प्रयुक्त किये जाने वाले वास्तु पुरुष मण्डल के विभिन्न दिशा व उन में स्थित पदों के लिए प्रयुक्त किया गया है, जो यह स्पष्ट करता है कि किस दिशा व पद में किस प्रयोजन के लिए निर्माण करना चाहिए तथा कौन से देवता की दिशा व स्थान किस प्रयोजन के लिए श्रेष्ठ है, अर्थात् किस स्थान पर किस प्रकार की ऊर्जा का निवास होता है, तथा उसका गुण धर्म क्या होता है ।



। ई उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

हीनान्तःपदं हिन्तः पदम्

इत्यत्र हिन्तःपदं पुनः न

हिन्तःपदं हीनान्तःपदं न

। १५५ । तत्रापि हिन्तःपदं न

अत्र । ई उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

। ई उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

ई हिन्तःपदं न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

। ई हिन्तःपदं न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

हिन्तःपदं । ई "नञ्" उक्तिः न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

। ई "नञ्" उक्तिः न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

हिन्तःपदं न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

अत्र ई उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

तत्र ई उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

। ई उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

। ई उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

तत्र उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

ई उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

तत्र उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र

। ई उक्त न तत्र कि नञ् उक्तिः ई उक्त न तत्र



जैसे ऋग्वेद के दूसरे मण्डल के पहले मंत्र स्पष्ट होता है ।

“ हे अग्ने । त्वं अद्म अश्मनः वनेभ्यः परि ” अर्थात् हे अग्ने तू जलों, पत्थरों और वृक्षों से उत्पन्न होता है :-

अर्थात् वह अग्नि रूपी विश्व ब्रह्मांड को चलाने वाली उर्जा जल पत्थरों और वृक्षों में जब किसी प्रकार अन्तर्निहित होगी तभी वह प्रकट हो सकेगी, इसी प्रकार स्थापत्य वेद में विभिन्न वृक्षों व प्रस्तरों के विभिन्न प्रयोग दिये गये हैं, जो निश्चित रूप से उनके अन्दर स्थित अग्नि उर्जा के भिन्न प्रकार की होने के कारण उस वृक्ष अथवा पत्थर आदि के गुण परिवर्तित कराते हैं ।

इसी प्रकार ऋग्वेद में प्रयुक्त इन्द्र, मरुत, उषा आदि प्रकृति की विभिन्न शक्तियों व उर्जाओं की स्तुतियाँ हैं जिनकी विभिन्न स्तुतियाँ उनके गुणों व प्रकार को दर्शाती हैं, जिस प्रकार अग्नि सूर्य आदित्य आदि की स्तुति लेकर व उषा जो सूर्य की प्रातःकाल की रश्मियों की स्तुति है, इसी प्रकार विभिन्न देवता वास्तु पुरुष मंडल में भिन्न दिशा व स्थान को दर्शाते देवता उस स्थान विशेष के गुण विशेष को दर्शाते हैं, जिससे उचित प्रकृति के अनुसार उत्सव के अनुकूल निर्माण में सहायता मिले ।

ऋतस्य सामन रण्यन्त देवा :

ऋग्वेद 1/147/1

यज्ञ में सामगान सुनकर देवता आनन्दित हो गये हैं ।

देव तत्त्व प्रकृति के उर्जा विशेष का बोधक है । और सामगायन से उनके आनन्दित होने का तात्पर्य उनकी उपस्थिति का जागृत हो जाना है, अर्थात् प्रकृति का रूप गुण विशेष वहाँ जागृत हुआ ।







इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निमाहुः अथो दिव्यः स सृपर्णो मरुत्मान ।

एकं सत् विष्णु बहुधावदन्ति अग्नि यमं मातरिश्वा नमाहुः ।

ऋग्वेद 1/164/47

एक ही सद् वस्तु है उस एक ही वस्तु का ज्ञानी लोग अनेक नाम देकर वर्णन करते हैं । उसी एक सत् को ज्ञानी इन्द्र मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सृपर्ण, मरुत्मान, यम, मातरिश्वा आदि नाम से वर्णित करते हैं ।

तदेवाग्निः तदादित्यः तद्वायुः तद् चन्द्रमाः ।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताआपः सः प्रजापतिः ॥

यजुर्वेद 32/1

वह ब्रह्म ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, आप और प्रजापति पदों से वेद मंत्रों में वर्णित है :-

एषं खलु आत्मा इशानः शंभुर्भवो रुद्रः प्रजापति विश्ववसूद्  
हिरण्यगर्भः सत्य प्राण ,

हंस शान्तः विष्णु नारायण ऋकः धाता सम्राट इन्द्र इन्द्ररिति ॥

मैत्रायणी 5/8

सब देवता इस मानवी देह में रहते हैं जिस प्रकार गाये गौशाला में रहती हैं ।

इसी प्रकार स्थापत्य वेद के ग्रन्थों में यह वर्णन मिलता है कि वास्तु पुरुष के जिस अंग अर्थात् पद देवता का वैद्य होता है, गृह स्वामी के उसी अंग पर कष्ट होता है ।

इससे स्पष्ट है कि भवन के वास्तु पुरुष मण्डल की उर्जा या पद देवता बाधित होने पर गृहस्वामी के उसी अंग को कष्ट पहुँचाते हैं, इसी प्रकार मानव



1. साधक को ज्ञान के लिये जिस प्रकार की साधना करनी पड़ेगी  
2. साधक को ज्ञान के लिये जिस प्रकार की साधना करनी पड़ेगी  
3. साधक को ज्ञान के लिये जिस प्रकार की साधना करनी पड़ेगी

जिस लिये साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी

1. साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
2. साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी

1. साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी

साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी

साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी

1. साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
2. साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी

साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी

साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी

साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी

साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी

साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी

साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी  
साधक को ज्ञान के लिये साधना करनी पड़ेगी



शरीर में भिन्न अंग के स्वामी कौन से देवता व गृह आदि हैं इसका स्पष्ट वर्णन मिलता है, जो स्थापत्य वेद का शेष वैदिक वांगमय अर्थात् चेतना विज्ञान से स्पष्ट अन्तर्सम्बन्ध दर्शाता है ।

चेतना अर्थात् समस्त विश्व ब्रम्हांड को धारण करने वाली शक्ति तथा विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान । उस अव्यक्त सत्ता के व्यक्त तथा बहुत हो जाने तथा पुनः अव्यक्त हो जाने की प्रक्रिया का विशेष अध्ययन "चेतना विज्ञान" है, जिसका मूल आधार वैदिक वांगमय है जैसा कि तैत्तिरीय उपनिषद् की निम्नलिखित पक्तियों से स्पष्ट होता है ।

सो काऽमायात् । बहुस्यापुंजायेयेति ।

स तपो तप्यत् ।

स तपस्तप्यत्वा इदं सर्वं सृजत यदि ेदकिञ्च

तत्सृष्टा तदैवानुप्राविशत ।

इस प्रकार वैदिक वांगमय या चेतना विज्ञान के समस्त क्षेत्रों का अध्ययन करने पर एक अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होता है कि चूंकि सृष्टि निर्माण निर्गुण निराकार अव्यक्त सत्ता से हुआ और जो शक्तियाँ, देव तत्त्व जिन प्रकृति के क्षेत्रों-जड़ व चेतन स्थावर जंगम जगत के विभिन्न तत्त्वों की विभिन्नताओं के कारण तत्त्व के रूप में वर्णित है, वैदिक ऋचाओं में उनके गुणों प्रकृतियों का वर्णन मिलता है । वही सत्ता या उर्जा कैसे मंत्रों से, "सामगान" से, "यज्ञों" से, व कैसे "निर्माण" आदि से प्राप्त की जा सकती है यही ज्ञान क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद से प्राप्त होता है ।

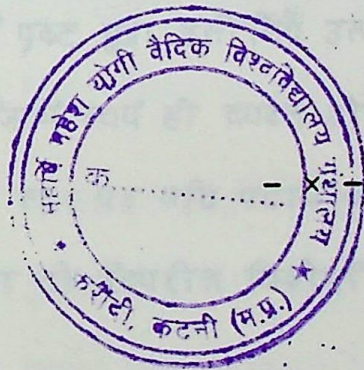
उन मंत्रों का कैसे उच्चारण करना, कैसे यज्ञों में प्रयुक्त किये जाने वाले तत्त्वों का वर्गीकरण कर उन्हें प्रयोग करना, कैसे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों देवताओं







उर्जाओं के स्थापत्यवेद वास्तु शास्त्र के सबसे महत्वपूर्ण आधार तत्त्व "वास्तु पुरुष मण्डल" के विभिन्न देवताओं की दिशा तथा पदस्थान विशेष का ज्ञान कर उन उर्जाओं शक्तियों, प्रकृतियों को व्यक्ति तथा समाज के लिये प्रकृति की श्रेष्ठतम अनुकूलता प्राप्त करने के लिये, विभिन्न निर्माण किये जावें, जैसे विभिन्न भवन, राजकीय निवास, प्रासाद, बापी, कुूप, तड़ाग, नगर, राजस्थानी, आदि का नियोजन किस प्रकार स्थापत्यवेद वास्तु शास्त्र के आधार पर किया जाये, जिससे व्यक्ति तथा समस्त समाज श्रेष्ठतम आधि भौतिक, आधि दैविक व आध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त कर सके । इसी विद्या का अत्यन्त क्रमबद्ध ज्ञान वैदिक वांगमय-चेतना विज्ञान में मिलता है, जो स्थापत्यवेद वास्तुशास्त्र व वैदिक वांगमय अर्थात् चेतना विज्ञान के अन्य क्षेत्रों से अत्यन्त पुष्ट व सुदृढ़ अन्तर्सम्बन्ध दर्शाता है ।









खण्ड-।

॥ख॥

महर्षि स्थापत्य वेद वैदिक वांगमय के चार प्रमुख वेदों में से एक अथर्व वेद का उपवेद है । विषय का एकांगी अध्ययन न कर वरन उसको महर्षि प्रणीत वैदिक वांगमय के चालीस क्षेत्रों से अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करते हुए अध्ययन का उद्देश्य स्थापत्य वेद को उसकी पूर्णता के साथ दिग्दर्शित कराना है । इसको व्यापक रूप से समझने के लिये समस्त विद्याओं की उत्पत्ति क्षेत्र उस विशुद्ध सत्ता को समझना अनिवार्य है, जहाँ प्रकृति पदार्थ रूप में व्यक्त नहीं हुई थी । सब कुछ निर्गुण निराकार अनादि, अनंत तत्त्व में निहित था जिसे विशुद्ध निस्पंद चेतना का क्षेत्र कहते हैं । इसी को ॥यूनीफाइड फील्ड॥ अथवा एकीकृत क्षेत्र भी कहते हैं ।

पुनः "एकाकी न रमयते सो कामयात" अर्थात् चूँकि एकाकी रमण नहीं हो सकता तो उस अव्यक्त में कामना हुयी, कामना अर्थात् इच्छा अर्थात् स्पंदन । यह स्पंदन वहाँ स्वयं प्रकट हुआ इसीलिये उस सत्ता को "स्वयं-भू" अर्थात् ॥ सेल्फ रिफरल॥ कहते हैं, जिसमें स्वयं ही व्यक्त होने की क्षमता है । जैसे आधुनिक विज्ञान में क्वार्क । क्वार्क के स्तर पर यदि पदार्थ को तोड़ा जाये तो वह शंकु द्य स्वयं अपने को पुनः शंकु या दो विपरीत त्रिकोणों में गठित कर लेते हैं ।

आधुनिक विज्ञान में यदि हम देखते हैं कि प्रत्येक पदार्थ का आधार उसके अणु परमाणु के स्तर पर निहित कणों की संख्या जिसमें न्यूट्रान - प्रोट्रान, न्यूक्लिस रूप में होते हैं, तथा इलेक्ट्रान्स उसका चक्कर लगाते रहते हैं । इन्हीं की संख्याओं में भिन्नता होने पर पदार्थ के गुण यथा भौतिक तथा रासायनिक गुण







बदल जाते हैं । इन अणुओं परमाणुओं के मध्य जो कार्य करते हैं, उनमें प्रमुख इलेक्ट्रो मैग्नेटिक उर्जा § इंटर एक्टिव फोर्स § तथा गुरुत्वाकर्षण आदि बल कार्य करते हैं, अर्थात् प्रत्येक पदार्थ के भीतर उर्जा जड़ तथा चैतन्य रूप में स्थित व कार्यरत रहती है इसी को स्थितिज व गतिज ऊर्जा के नाम से हम जानते हैं । इसी उर्जा के क्षेत्र को हम क्रमशः निस्पंद व स्पंदित चेतना के रूप में जानते हैं ।

पदार्थ जगत में प्रकाश के कण को सूक्ष्मतम माना जाता है, जो पदार्थ के कण व तरंग दोनों रूपों में अंतः परिवर्तित होता रहता है, अर्थात् वह कण तथा तरंग रूप में, दोनों रूपों में अपने को स्वतः ही परिवर्तित करता रहता है । सफेद प्रकाश की किरण को जब "प्रज्म" से गुजारा जाता है तो वह प्रकाश सात रंगों में विभक्त हो जाता है तथा बैंगनी, जामुनी, नीला, हरा, पीला, नारंगी व लाल रंगों में विभक्त हो जाता है तथा भौतिक विज्ञान के एक क्षेत्र क्रोमेटोलॉजी के अनुसार लाल रंग के क्षेत्र में जिक व पीले रंग के क्षेत्र में "प्रोटीन" आधिक्य हो जाता है । जिसका मूल कारण इन विभिन्न रंगों की किरणों की तरंगों के तरंग धैर्य की भिन्नता है । अर्थात् इनमें चेतना भिन्न प्रकार से स्पंदित हो रही है ।

संस्कृत में "देवता शब्द" "दिव" धातु से बनता है । "दिव" का अर्थ होता है प्रकाश अर्थात् इसको इस रूप में भी समझा जा सकता है कि देवताओं के विभिन्न रूप प्रकाश अर्थात् उर्जा व स्पंदन के ही विभिन्न रूप हैं, जिनको इनके गुण, धर्म, प्रकृति व व्यवहार की भिन्नता के कारण अलग-अलग रूपों में जाना जाता है । अगर लिखे पीले व लाल रंगों के गुणों के आधार पर जिस प्रकार हम रंगों के गुण धर्म की व्याख्या करते हैं उसी प्रकार प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को देवी व देवताओं की विभिन्न स्थाओं में व्यक्त किया गया है । प्रतिष्ठा विज्ञान में प्रत्येक देवी-देवता के रूप, आकार अस्त्र, शस्त्र, वाहन आयुध, परिधान आदि का वर्णन उस उर्जा चेतना विशेष के गुण व प्रकृति का ही सांकेतिक अभिव्यजन है, जिसको कि किसी देवी देवता

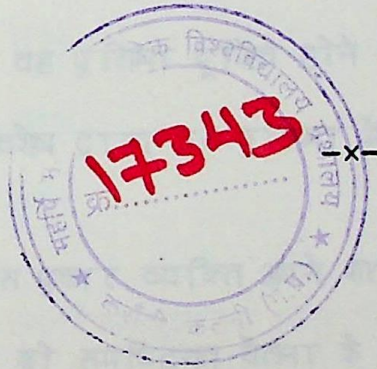


CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



विशेष के लिए प्रयुक्त किया गया है ।

यही तथ्य इस बात को प्रमाणित करता है कि आधुनिक विज्ञान में जिन तथ्यों शक्तियों - उर्जाओं व स्पंदनों के लिये आधुनिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार इन शक्तियों के लिये वैदिक वाङ्मय में भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है । तथा प्रत्येक शब्द के गठन के पीछे अत्यंत पुष्ट वैज्ञानिक सिद्धान्त है, व प्रत्येक शब्द के अक्षर मात्रा, व शब्द संयोजन विशेष प्रयोजनों के कारण ही प्रयोग किये गये हैं । जिसको विश्लेषित कर उस अर्थ, विशेष व उस गुण विशेष को सहजता से समझा जा सकता है । तथा उनको समझने पर वैदिक वाङ्मय की ऽष्टलाइड वैल्यू अथवा आधुनिक जीवन में व्यावहारिकता को जीवन के सुख स्वास्थ्य के लिये प्रयोग किया जा सकता है ।









:: महर्षि स्थापत्य वेद की परिभाषा व वर्गीकरण ::

महर्षि स्थापत्य वेद की परिभाषा -

• अव्यक्त को व्यक्त कर उसमें चेतना

की स्थापना करने का ज्ञान स्थापत्य वेद है ।

यह अव्यक्त से व्यक्तिकरण दो प्रकार सं संभव है एक तो निर्गुण निराकार से सगुण साकार में अभिव्यजन- अर्थात् जैसे एक प्रस्तर शिला में अनन्त संभावनाएँ छुपी हुई हैं, उसमें आवश्यकतानुसार किसी भी प्रतिभा का निर्माण किया जा सकता है । परन्तु निर्माण प्रक्रिया के पूर्ण होने मात्र से वह पूजित होने योग्य नहीं हो जाती । उसमें प्राण प्रतिष्ठा की जाती है, जिसका पूरा व्यवस्थित विधान है, तभी वह प्रतिभा पूजित होने योग्य होती है । जिसमें मन्त्र विशेष अर्थात् स्पंदन विशेष द्वारा उस प्रतिभा में प्राणायाम-चेतन्यता स्थापित की जाती है।

जिस प्रकार व्यक्ति अपने शरीर में विशेष मंत्रों का उच्चारण कर अपनी व्यक्तिगत चेतना को समष्टिगत चेतना के साथ योग कराकर आंतरिक आकाश की विशालता को, अपने व्यक्तित्व को अनन्त शक्तिवान व सामर्थ्यवान अनुभव करता है, जैसा गीता में वर्णित है "योगस्थ कुरु कर्मणि" अर्थात् व्यक्तिगत सत्ता का उस ब्रह्महीन सत्ता से योग करा कर कर्म करो तो उसके फल को बताया कि "मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्" अर्थात् सब प्रकृति मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है । अर्थात् जब हम व्यक्तिगत सत्ता से उठकर समष्टि से अर्थात् उस विराट के अर्थात् प्रकृति के सिद्धान्तों से अनुकूलता स्थापित कर लेते हैं तो क्षमता में वृद्धि होकर अजेयता की स्थिति, पूर्णता की स्थिति प्राप्त होती है ।



॥ अथोक्तं च तद्वर्गीयं किं तत् तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं ॥

- तद्वर्गीयं किं तत् तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं

तद्वर्गीयं किं तत् तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं

। ई तत् तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं

तद्वर्गीयं किं तत् तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं

तद्वर्गीयं किं तत् तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं

तद्वर्गीयं किं तत् तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं

तद्वर्गीयं किं तत् तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं

तद्वर्गीयं किं तत् तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं

तद्वर्गीयं किं तत् तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं

तद्वर्गीयं किं तत् तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं

। ई तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं तद्वर्गीयं



इसी प्रकार महर्षि स्थापत्य वेद में जब वास्तु पुरुष की अभिव्यंजना को समझकर उसके अनुरूप निर्माण करते हैं तो समस्त निर्माण प्रकृति के नियमों के अनुकूल होता है, जिसमें क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, चुंबकीय क्षेत्र, सूर्य, ग्रहों, व नक्षत्रों व राशियों आदि की अनुकूलता अर्थात् समस्त विश्व ब्रम्हांड की व्यक्त अव्यक्त शक्तियों की व्यक्ति विशेष, प्रयोजन विशेष स्थान विशेष के संदर्भ में पूर्ण अनुकूलता प्राप्त होती है, जिसके कारण व्यक्ति तथा समाज आधि भौतिक आधि दैविक तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त करता है ।

मानसार नामक ग्रंथ के अनुसार इस विद्या को चार प्रमुख भागों में बाँटा गया है :-

§ 1 §	भूमि	§ समस्त प्रकार की भूमियाँ §
§ 2 §	भवन	§ समस्त प्रकार के भवन, महल, देवस्थान §
§ 3 §	यान	§ रथा दिवर्णन §
§ 4 §	पर्यंक	§ आसन, झूला, फर्नीचर आदि §

समरांगण सूत्रधार भवन निवेश में इसे " अष्टांग स्थापत्य " के अन्तर्गत निम्नलिखित आठ भागों में बाँटा गया है :-

§ 1 §	वास्तु पुरुष विकल्पन
§ 2 §	पुर निवेश तथा द्वार कर्म
§ 3 §	प्रसाद निर्माण
§ 4 §	ध्वजोच्छ्रिति
§ 5 §	नृपतिवेश्म अर्थात् राजवेश्म
§ 6 §	चातुर्वर्ण्य विभाग - भवन निवेश
§ 7 §	यजमान की शाला का मान यज्ञ वैदी प्रमाण एवं कोटि होम विधि
§ 8 §	राज शिविर § छावनी § और दुर्ग कर्म







॥१॥

वास्तु पुरुष विकल्पन :-

वास्तु पुरुष समस्त विश्व ब्रम्हांड की व्यक्त-अव्यक्त शक्तियों की भूमि पर किस प्रकार सम्पूर्णता से अनुकूलता प्राप्त की जा सके उसके लिये उस विराट् ॥ मैक्रो यूनिवर्स ॥ को सूक्ष्म ॥ माइक्रो यूनिवर्स ॥ रूप में व्यक्त किया गया है ।

मानसार में बत्तीस प्रकार के वास्तु का वर्णन मिलता है । जिनका प्रयोग अलग-अलग प्रयोजनों के लिए किया जाता है । इसमें प्रकार वैभिन्न्य से देवों का स्थिति वैभिन्न्य दर्शाया गया है ।

यह मुख्यतः दिशाओं के आधार पर किस प्रकार भवन या नगर अथवा राजमहल नियोजन किया जाये उसका आधार है इसके माध्यम से स्थान नियोजन ॥ साइट प्लानिंग ॥ की जा सकती है । यह स्थापत्य वेद का मुख्य आधार है । व अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र है ।

॥२॥

पुर निवेश :-

इसमें समस्त समाज को पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए नगर निवेश अत्यन्त व्यवस्थित व प्रकृति के नियमों के अनुकूल होना चाहिए । भिन्न क्षेत्रों व्यवसायों प्रकृतियों के लिये उनके अनुकूल स्थान का निर्धारण का वर्णन है ।

आबादी के आधार पर नगर का आकार निर्धारण रखा, यातायात की सुगमता हेतु रथया उपरथया तथा चारों दिशाओं व उप दिशाओं में महाद्वारों व पक्षद्वारों का विधान प्रकृति के चैतन्य स्पन्दित उर्जा सूर्यादि से तथा चुम्बकीय क्षेत्रादि की अनुकूलता निर्धारित करके की जाती थी । जिन व्यक्त-अव्यक्त शक्तियों को इन देवता व देवियों की स्थाओं से जानते थे ।







द्वार कर्म नगर के चारों ओर प्रकार वलय के आधार पर होता था, अतः प्राकार निर्माण परिखा खनन, आदि के साथ-साथ राजमार्ग, स्थमार्ग, यानमार्ग, घण्टा मार्ग तथा प्रतली निर्माण उक्त ज्ञान के आधार पर किया जाता था ।

§3§ प्रासाद निर्माण :- प्रासाद निर्माण से यहाँ देव मन्दिर निर्माण से तात्पर्य है । समरांगण सूत्रधार में "प्रासाद" शब्द को देव मन्दिरों के लिये पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है । जहाँ राज प्रासादों से तात्पर्य है वहाँ "राजे वेश्म" शब्द का प्रयोग किया गया है ।

इस भाग में प्रासाद शब्द एवं उससे संबंधित अनेक विषयों जैसे उत्पत्ति, आकार, संस्तव, अंग, प्रत्यंग, भूषा, शिखर, रचना, शैली, देव वृन्द, मण्डप, गोपुर प्राकार, आदि का सविस्तार वर्णन है ।

§4§ ध्वजोच्छ्रितः :- प्राचीन स्थापतियों की परम्परा में इन्द्र उनके इष्टदेव थे, जिसके कारण इन्द्र महोत्सव में एक विमानाकार रथ बनाकर जुस्त निकाला जाता था ।

§5§ नृपतिवेश्म § राज वेश्म § :- राजमहल की रचना भी नगर निवेश के समान परन्तु राजोचित नानारम्यों, भवनों, सौधों, के साथ 5,6,7, कक्षाये मण्डप क्रीड़ा स्थान पड़ाव दूतावास, अन्य राजाओं के उपयुक्त स्थानों के साथ-साथ व्यावसायिक स्थान मार्ग तथा चित्रशालाये आदि निर्मित की जाती हैं ।

§6§ चातुर्वर्ण्य विभाग - जन भवन :- जन भवन से तात्पर्य चतुर्वर्णों के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय वाले व्यक्तियों को कहाँ बसाना चाहिये इसका व्यवस्थित वर्णन है ।







§ 7 §

यजमान की शाला का मान, यज्ञ वेदी प्रमाण एवं कोटि होम विधि -

इस वर्ग में यजमान की शाला बनाने की विधि का वर्णन है व यज्ञ वेदी निर्माण आदि का वर्णन प्राप्त होता है ।

§ 8 §

राज शिविर निवेश § छावनी § और दुर्ग कर्म :

जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है कि इस भाग में राज शिविर निवेश का वर्णन है कि कहाँ पर किस व्यक्ति के लिए क्या व कैसे व्यवस्था की जाती थी, व दुर्गों के प्रकार आकार आदि का वर्णन है ।



- श्रीगुरुदेव की आज्ञा के अनुसार मैंने यह किताब लिखी है ।

१५१

मैंने यह किताब लिखी है कि श्रीगुरुदेव की आज्ञा के अनुसार मैंने यह किताब लिखी है ।

: हेतु है कि किताब लिखी है ।

१५२

श्रीगुरुदेव की आज्ञा के अनुसार मैंने यह किताब लिखी है ।

१५३



:: चेतना विज्ञान परिचय ::

=====

चेतना अर्थात् समस्त विश्व ब्रम्हांड को धारण करने वाली शक्ति उसका विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान उस अव्यक्त सत्ता के व्यक्त तथा बहुत हो जाने तथा पुनः अव्यक्त हो जाने की प्रक्रिया का विशेष अध्ययन जो प्रयोग अथवा अनुभव से पुनः सिद्ध किया जा सके यह चेतना विज्ञान है जिसका मूल आधार वैदिक वांगमय है जैसा कि मूल तैत्तिरीय उपनिषद् की निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होता है -

सोऽकामायात् । बहु स्यां प्रजायेयेति ।

स तपोऽतप्यत ।

स तपस्तप्त्वा इदं सर्वम सृजत यदिदिं किञ्च ।

तत्सृष्ट्वा तदैवानुप्रविशत ।

§ तैत्तिरीय 2/6/1§

परम् पूज्यनीय महर्षि महेश योगी जी ने चेतना नामक, ग्रन्थ में योग शास्त्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि को उद्धृत करते हुए स्पष्ट किया है कि " महर्षि पतंजलि ने जितना ऋषियों-सिद्धियों का वर्णन किया है उन सबका रहस्य यह है कि विशुद्ध अव्यक्त निश्चिन्त आत्म चेतना शुद्ध चेतना अव्यक्त चेतना का स्वरूप जिसके अनुभव में प्रगाढ़ रूप से स्थायी हो गया वह अपने अव्यक्त रूप आत्मा में ही सारे सगुण साकार विश्व ब्रम्हांड को लेकर बैठता है जहाँ जो प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है कर लेता है।"

उपर्युक्त तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो यह दर्शाता है कि समस्त विश्व ब्रम्हांड को धारण करने वाली शक्ति की चेतना है जो निर्गुण निराकार रूप में सर्वत्र

ग्रन्थ - चेतना, द्वारा महर्षि महेश योगी पृष्ठ - 11



तस्मात् तस्मिन् विषये विचार कर्तव्य किं विचार कर्तव्य तस्मात् तस्मात्  
 अथ तस्मात् विचार किं विचार कर्तव्य तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्  
 अथ तस्मात् विचार किं विचार कर्तव्य तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्  
 की तस्मात् विचार कर्तव्य तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्  
 - ई तस्मात् विचार कर्तव्य तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्

११ - तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात् तस्मात्



सदैव विद्यमान रहती है । व "समस्त विश्व ब्रम्हांड उस अव्यक्त निर्गुण निराकार चेतना का सगुण साकार व्यक्त स्वरूप है तो अव्यक्त आधार में काबू पाने से सगुण साकार व्यक्त क्षेत्र में जो चाहे सो कर सकते हैं ।<sup>1</sup> चेतना ज्ञान के आधार हैं, चेतना का स्तर, जिस चेतना में बैठ कर हम कोई चीज जानते हैं उस चीज का ज्ञान हमको उसी चेतना के स्तर से होता है । जब हमारी चेतना का स्तर बदल जाता है तो ज्ञान भी बदल जाता है । एक चेतना के स्तर पर तो यह बात है कि यह अव्यक्त चेतना ही व्यक्त हो के सारे विश्व ब्रम्हांड का निर्माण हुआ।<sup>2</sup> एक दूसरी चेतना के स्तर पर एक दूसरी बात है और वह यह कि चेतना की वह अव्यक्त निराकार अखंड नित्य सनातन सत्ता अभी-भी अस्त-व्यस्त नहीं हुई है वह वही है और मैं वही हूँ अहं ब्रह्मास्मि सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" : यह सारा विश्व ब्रम्हांड शुद्ध चेतना स्वरूप है और चेतना की सत्ता स्वयं मेरे अपने आप की चेतन सत्ता है ये दोनों बात अलग-अलग हो गईं एक तो यह कि सारा विश्व ब्रम्हांड एक समस्त अव्यक्त चेतना का ही यसार है, उसके लिये उदाहरण है कि जैसे वह रस जो न हरा है, न लाल न पीला है, लेकिन वही बिना रंग का रस व्यक्त होकर हरा पत्ता, लाल पंखुड़ी बन गई । तो एक रंगहीन सत्ता क्रियाशील हो के व्यक्त होकर सिन्न-भिन्न रूपों रंगों में व्यक्त हो गई ।

इसी प्रकार अव्यक्त निर्गुण निराकार चेतना जब व्यक्त होकर सगुण साकार हो व्यक्त होती है तो विभिन्न रूपों, रंगों, गंधों, रसायनों, रत्नों, वनस्पतियों आदि के रूप में व्यक्त हो स्वयं को पंच महाभूतों से निर्मित करती है व "एकोऽहम् बहुस्यामि" हो अनेकानेक रूप धारण करती है ।

1- ग्रन्थ - चेतना द्वारा - महर्षि महेश योगी प्रष्ठ - 12

2- " - वही - - " प्रष्ठ - 21







चेतना का पदार्थ रूप में परिणत होना ही ज्ञान का स्वरूप है, और इस ज्ञान के स्फुरण में ही पदार्थ की अभिव्यक्ति है, इसी लिये कहते हैं इससे सृष्टि हुई वेदों से सृष्टि हुई ।

वह अव्यक्त निर्गुण निराकार चेतना आत्म सत्ता अपने आप में स्फुरित हुई स्पन्दित हुयी, सारे ब्रम्हांड का सृजन बिना लाली का रस अपने आप में लाल हो के स्फुरित हुआ अव्यक्त निर्गुण निराकार अपने आप में स्फुरित हो के सगुण साकार का रूप हुआ यह चेतना विज्ञान है ।<sup>1</sup>

जब तक हमारी चेतना में पूर्णता नहीं आती तब तक हमारे पदार्थ के मूल्यांकन में पूर्ण उभार नहीं होगा जगत के स्वरूप की पूर्णता का अनुभव चेतना के पूर्ण रूप के सजीव होने में ही है, चेतना का पूर्ण रूप सजीव है, अर्थात् चंचलता और निश्चलता : दोनों जब एक साथ चेतना में विद्यमान हैं ।<sup>2</sup>

अतः अव्यक्त तथा व्यक्त जगत को पूर्ण रूप से सम्झने के लिये चेतना की पूर्ण जागृति अनिवार्य है । तभी समस्त सृष्टि के विभिन्न तत्त्वों का पूर्ण ज्ञान होगा । जो कि स्वयं ही प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों, भूमि, जल, वायु, आकाश, अग्नि, तथा उनसे निर्मित समस्त गृह, नक्षत्र, वनस्पति, रत्न, औषधि, मनुष्य, दिशा, आदि की अंतर्सम्बद्धता को दिग्दर्शित करायेगी व वैदिक ज्ञान अर्थात् चेतना विज्ञान पर आधारित स्थापत्यवेद के आधार पर निर्मित भवनो, व्यक्तियों व प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों से उनके अंतः सम्बन्धों का ज्ञान होगा जो कि उसके

1- ग्रन्थ - चेतना द्वारा ऋषि महेश योगी पृष्ठ - 24

2- वही " " " " पृष्ठ - 24







प्रकृति के अनुकूल उचित निर्माण व पहले से निर्मित भवनों के दोषपूर्ण निर्माणों के शोधन में प्रयुक्त किया जा सकेगा ।

प्रकृति को जैसा गीता में आठ भागों में बाँटा है ।

भूमिरापोऽनलो वायुःखं मनो बुद्धि रेव च ।

अहंकार इतीमं मे भिन्ना प्रकृति रष्टवा ॥

आठ रूपों में प्रकृति को बाँटा है और प्रकृति का पूर्ण स्वरूप जहाँ मन शांत हुआ अपनी आत्मा में अपनी चेतना में है । चेतना अपने स्वरूप का अनुभव करती है, वह अनुभव कर्ता और जिसका अनुभव कर रही है, वे दोनों अपनी आत्म सत्ता चेतना सत्ता में होने के कारण ही उसी अव्यक्त चेतन सत्ता में सारे अभिव्यक्त सृष्टि की मूल प्रकृति है ।

सृष्टि के विभिन्न व्यक्त रूप "रस" और "नाम" दो हैं । चेतना की एक अवस्था अतम्यरा प्रज्ञा महर्षि पातंजलि उसे कहते हैं जब शुद्ध शान्त चेतन अवस्था में नाम का स्पंदन मात्र रूप को उपस्थित कर देता है ।

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य उद्घाटित होता है कि प्रकृति के विभिन्न रूपों की जो स्थायें हैं, वैदिक वांगमय में, वह उन स्पंदनों के रूप हैं जिन्हें एक विशेष चेतना या उर्जा की अवस्था में मात्र स्पंदन के द्वारा व्यक्त रूप से प्रकट किया जा सकता है, दूसरे रूप में यह अर्थ स्पष्ट होता है कि विभिन्न रूपों के "नाम"-स्पंदन में उस व्यक्त पदार्थ के गुण धर्म छुपे रहते हैं । यह तथ्य प्रयोगात्मक सृष्टि से भी महत्वपूर्ण है ।

स सृष्टवा सदैवानुप्राविषत

सृष्टिकर्ता स्पंदन मात्र मे सृष्टि करके उसमें पिरो गया ।







इसका रहस्य आधुनिक भौतिक विज्ञानियों ने निकाला "क्वांटम फ़िजिक्स" से कि दृष्टा दृश्य को जब देखता है तो उसमें कुछ परिवर्तन प्रभाव सजीवता लाता है । दृश्य में कुछ प्रभाव उत्पन्न करता है, यह आधुनिक सिद्धान्त प्राचीन योगशास्त्र के सिद्धान्तों को पुष्ट करता है ।

जैसे आधुनिक भौतिक विज्ञानियों ने कहा है कि सारी सृष्टि का निर्माण शून्य  $\emptyset$  वैक्यूम से हुआ फिर उस खाली पोल वैक्यूम को गणित से सम्झा तब पता चला कि इस शून्य में कुछ संस्कार है । जिसे वैज्ञानिक "वर्चुअल प्रोटान"  $\emptyset$  कहते हैं, गणित में वर्चुअल फ़्लक्चुएशन कहते हैं, तो यह मिला कि उस शून्य वैक्यूम में कुछ स्पंदन है, लेकिन उस पोल को स्पंदन से बना हुआ देखने नहीं किसी ने, परन्तु सारा विश्व ब्रम्हांड उसी से बना है शून्य से निर्गुण निराकार से सारी सृष्टि का निर्माण हुआ है । भौतिक विज्ञान ने यह प्रमाणित किया ।

जिस सनातन अखंड सत्ता के २ श्वास रूप पूर्ण ज्ञान का स्पंदन वेद के रूप में प्रकट हुआ है और उस वेद से सारी सृष्टि का निर्माण हुआ ।

यस्य निश्चितं वेदा ।

यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।<sup>1</sup>

यह उस चेतना की शांति स्थिति का गुणगान है उसका गुण क्या है । एक एक उसका स्पंदन पूर्ण ज्ञान का स्पंदन है वेद, और वेद क्या है, सृष्टि का आधार है, सृष्टि का कारण है । उसी वेद के स्पंदन से, उसी नाम से रूप प्रकट हुआ सारी सृष्टि प्रकट हुई ।







इसी प्रकार ऋग्वेद में जो ज्ञान है, वह चेतना का बना है।

मानसार नामक ग्रन्थ में जब उस अव्यक्त निर्गुण निराकार ब्रम्ह की स्तुति करते हैं तो कहते हैं कि -

उत्पत्तिं रक्षणं लयानं जगतां प्रकुर्वन् भूवारिवह्निमरूतो गगनं चसूते ।  
नाना सुशेखर किरीट विलोलमाला भृंगा क्लीढ चरणाम्बुरु हैं नमामि  
अर्थात् जगत सृजन के लिये भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश को प्रकट  
किया उनको मैं नमन करता हूँ, जिनके चरण कमलों को विभिन्न सूरों  
के ईश्वर के मुकुटों की मधुमखियों की पंक्तियों के समान पंक्तियों  
नमन करती हैं ।

उन्हीं पंचतत्त्वों से विभिन्न रूपों का सृजन हुआ ।

वेद का अर्थ है, ज्ञान तथा विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान । पूर्ण  
ज्ञान में विशिष्ट ज्ञान निहित है । सर्वप्रथम मन के तीनों आयाम ज्ञान-भाव और  
क्रिया एक इकाई के रूप में अर्थात् संहिता रूप में अभिव्यक्त हुये तब वह पूर्ण ज्ञान  
कहलाता है, इस ज्ञान के पश्चात् जब चेतना विशिष्ट ज्ञान की ओर अर्थात् विशेष  
वस्तुओं के बीच विविध संबंध बनाते हुए वस्तुओं के नियमों का ज्ञान होना वेद  
विज्ञान चेतना विज्ञान कहलाता है ।

आइन्स्टीन के अनुसार इस विश्व को तब तक जानना संभव नहीं है,  
जब तक हम देश और काल की सीमा का अतिक्रमण न कर दें, क्योंकि देश और काल  
ही वह सीमा रेखा है जो भौतिक विश्वको आध्यात्मिक विश्व से अलग करती है ।







आइंस्टीन देश और काल की अवधारणा को न्यूटन के विपरीत मन के भीतर मानते हैं, उनके अनुसार यदि मन का अतिक्रमण कर दिया जाये तो हम नये विश्व को सम्झने में स्थिर हो सकते हैं जैसा कि गीता में भगवान कृष्ण ने कहा -

निस्त्रैगुण्य भवार्जुन

यह जो त्रिगुण जगत सत्वरज तम इसको स्थापत्य की दृष्टि से देखें तो जो पदार्थ रूपी त्रिआयामी जगत है, उसके परे जाकर जो "शिवं शान्तं अद्वैतं चतुर्थं मान्यते" जो चतुर्थ अवस्था लम्बाई चौड़ाई मोटाई अर्थात् त्रिआयामी जगत के परे चतुर्थ चेतना की अवस्था है "स आत्मा स विज्ञेयः" वह आत्मा जानने योग्य है क्योंकि -

"योग स्थः कुरु कर्मणि" । उसके योग में रहकर कार्य करने से कार्य की क्षमता असीम और उपलब्धि निश्चित हो जाती है, क्योंकि तब "मयाध्यक्षेण प्रकृतिं सूयते सचराचरम्" ।

ऐसे व्यक्ति के अधीन प्रकृति के सारे नियम होते हैं । यह अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है । प्रकृति की विशुद्ध चेतना की जो शान्त अवस्था है, वही है । स्त्रोत समस्त व्यक्त जगत की । दूसरे शब्दों में समस्त जगत उस विशुद्ध चेतना अथवा ऊर्जा का ही रूपान्तरण व अभिव्यंजन है । वही एक से अनेक होता है । जो इस प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होता है -

सोऽकामयात बहु स्यांप्रजायेयति ।

स तपोऽतप्यत ।

स तपस्त त्वा इदं सर्वम सृजत यदि दं किञ्च ।

तत्सृष्टा तदैवानु प्राविशत् ।







उसने कामना की कि मैं बहुत हो जाऊ । मैं प्रजावाला हो जाऊ,  
 उसने तप तपा । तप तपने से पीछे उसने इस सबको रचा जो कुछ यह है ।  
 इसको रच कर सह इसमें प्रविष्ट हुआ ।

तत्पश्चात् चौदह प्रकार की प्राणि सृष्टि हुई :-

अष्ट विकल्पो दैवस्तैर्यग्योनः पंचधा भवति ।

मनुष्यश्चैकः विधः समासतो भौतिकः सर्गः ।

उर्ध्वं सत्त्व विशालस्त मोविशालश्च मूलतः सर्गः ॥

मध्यं रजो विशाला ब्रह्मा दिस्तम्ब पर्यन्तः ॥

§ सां. का. 53-54§

अर्थात् आठ प्रकार की दैवी सृष्टि है । पांच प्रकार की तिर्यक योनियों की है । मनुष्य की एक प्रकार की है । अमर की सत्त्व प्रधान है और मध्य की रज प्रधान है ये ब्रह्मासे शैवाल तक सृष्टि है ।

चौदह प्रकार की सृष्टि -  
 =====

ब्रह्मा	:	आठ प्रकार का
प्राजापत्य	:	दैवसर्ग जो भिन्न
ऐन्द्र	:	भिन्न कर्मोपासना
दैव	:	का फल है ।
गन्धर्व	:	
पितृ	:	
विदेह	:	
प्रकृतिलय	:	







मनुष्य	:	मानुषी सृष्टि
पशु	:	
पक्षी	:	
सरी सृप	:	
॥ रेगने वाले जन्तु ॥	:	
कीट	:	पांच तिर्यक सर्ग
स्थावर	:	

इनमें मनुष्यों के निचले पांच प्रकार के तिर्यक सर्ग का तो प्रत्यक्ष अनुभव होता है किन्तु मनुष्य से ऊँचे आठ प्रकार के दैवसर्ग का मनुष्यों से सूक्ष्म होने के कारण प्रत्यक्ष नहीं होता है ।

अब स्थापत्य वेद के लिए कहते हैं, 'तिष्ठति इति स्थाः तेषां पतिः इति स्थपतिः' अर्थात् जितना स्थावर जगत है इसका ज्ञान रखने वाला व्यक्ति स्थापति कहलाता है । अतः उपर्युक्त वर्णन में तिर्यग्सर्ग जो कि ब्रह्म के ही विभिन्न रूपों में अन्तिम है वह स्थापत्य वेद में, उसको प्रकृति के अनुकूल निर्माण हेतु प्रयुक्त किया जाता है व जैसा कि स्थापत्य वेद की परिभाषा है अव्यक्त को व्यक्त कर उसमें चेतना की स्थापना करने की विद्या स्थापत्य वेद है । अब चेतना की उच्चतम अवस्था ब्रह्म रूप में है, अतः यदि स्थापत्य वेद का पूर्ण ज्ञान चाहिये तो ब्रह्म का ज्ञान भी आवश्यक है । अतः स्थापत्य वेद का समस्त चेतना विज्ञान से सम्बन्ध जानना भी आवश्यक है । अब चेतना अपने को कैसे व्यक्त करती है व उसके विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान को जानना आवश्यक है जो निम्नलिखित सूत्रों से क्रमबद्ध रूप से जाना जा सकता है, जो सांख्य से लिये गये हैं :-







- ॥ १ ॥ अथात स्तच्च समास :- अब दुखी की निवृत्ति का साधन तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान है इसलिए तत्त्वों का स्वीप में वर्णन करते हैं ।
- ॥ २ ॥ अष्टौः प्रकृतमः :- मूल प्रकृति, महत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, व ग्रन्थ ।
- ॥ ३ ॥ षोडश विकाराः :- पांच स्थूल भूत आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ - नेत्र, श्रोत, प्राण, रसना व त्वचा ।
- पाँच कमेन्द्रियाँ - वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा ।  
एवं सोलहवें विकार मन है ।
- ॥ ४ ॥ पुरुष - ॥चेतन तत्त्व :- के चेतन तत्त्व पुरुष हैं ।
- ॥ ५ ॥ त्रैगुण्यमः :- चौबीसो जड़, सत्त्व, रज, तम, तम्रि गुण वाले हैं ।
- ॥ ६ ॥ संचारः प्रतिसंचरः :- सृष्टि और प्रलय ॥ इन तीनों गुणों तत्त्व, रज, तम, की अवस्था विशेष में ।
- ॥ ७ ॥ अध्यात्म मंथि भूत मंथि देवं च :- सृष्टि के तीन अवान्तर भेद, अध्यात्म, अधिभूत, अधिदेव है ।
- ॥ ८ ॥ पञ्चाभिबुद्धयः :- पांच वृत्तियाँ प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, और स्मृति ।
- ॥ ९ ॥ पचदृग्योनयः :- पांच ज्ञान के स्त्रोत ज्ञानेन्द्रियाँ नेत्र, श्रोत, प्राण, रसना और त्वचा ।







§ 10§ पंचवायवः : पाँच प्राण, प्राण, अपान,  
समान, व्यान व उदान ।

प्राण - का निवास हृदय है यह शरीर के ऊपरी भाग में रहता हुआ अमर  
की इन्द्रियों का काम संचालन करता है ।

अपान - का स्थान गुदा के निकट है और शरीर के निचले भाग में संचालन  
करता है ।

समान - शरीर के मध्य भाग नाभि में रहता है हृदय से गुदा तक संचार करता  
है । खाये पिये अन्न, जल, आदि के रस को सब अंगों में बराबर  
बँटना उसका काम है ।

व्यान - सारी, स्थूल सूक्ष्म अति सूक्ष्म, नाडियों में घूमता शरीर के प्रत्येक  
भाग में रुधिर का संचालन करता है ।

उदान - सूक्ष्म शरीर को शरीरान्तर व लोकान्तर में ले जाता है ।

### बन्धन और मोक्ष के तीन प्रकार =====

§ 19§ त्रिविधोबन्ध - तीन प्रकार का बन्ध होता है ।

§ वैकृतिक, दाक्षिणिक, प्राकृतिक §

वैकृतिक बन्ध - जो भी योगी विर्तका युगत वाली प्रथम भूमि में आत्म  
साक्षात्कार से शून्य केवल भूत, इन्द्रिय, मन आदि 16  
विकारों में ही आसक्त हो रहे हैं अथवा राजसी प्रवृत्ति  
वाले मनुष्य जिनके कर्म सत्त्वगुण, तमों गुण, दोनों से मिश्रित







है, वे इन वैकृतिक के अधीन उसी भूमि में मनुष्य लोक में जन्म लेते हैं । इनका यह बन्ध वैकृतिक व वैकारिक कहलाता है ।

दाक्षिणिक बन्ध - जो विचारानुगत वाली दूसरी भूमि में आत्म साक्षात्कार से शून्य रहकर केवल सूक्ष्म विषयों में ही आसक्त हो रहे हैं तथा जो आत्म साक्षात्कार से शून्य रहकर फल कामना के अधीन होकर केवल सकाम इष्ट पूर्ति आदि परोपकार और अहिंसात्मक सात्त्विक कर्मों में लगे हुए हैं वे इन सात्त्विक वासनाओं के अधीन होकर दक्षिण मार्ग से चन्द्रलोक अर्थात् सात्त्विकता के तारतम्यानुसार 6 देव सर्गों में सात्त्विक वासनाओं का फल भोगकर साक्षात्कार के लिए अपनी पिछली भूमि आत्म की योग्यता को देखते हुए मनुष्य लोक में फिर जन्म लेते हैं । इनका यह बन्ध दाक्षिणिक कहलाता है ।

प्राकृतिक बन्ध : सम्प्रज्ञात समाधि की उच्चतर और उच्चतम भूमि आनन्दानुगत और अस्मितानुगत को प्राप्त हो किये हुये योगी जो आत्म साक्षात्कार से शून्य रहकर केवल इन भूमियों के आनन्द में आसक्त रहते हैं और विवेक ख्याति द्वारास्वरूपावस्थितिका यत्न नहीं करते हैं, वे शरीर त्यागने के पश्चात् इन वासनाओं के अधीन लम्बे समय तक विदेह और §आस्मिता§ प्राकृतिलय अवस्था में केवल्य पद जैसी स्थिति में रहकर आत्म साक्षात्कार के लिये पानी में डुबकी लगाने वाले पुरुष के सदृश्य फिर उठते हैं अर्थात् उच्च कुल वाले योगियों के घर में पिछली भूमि की योग्यता को प्राप्त किये हुये फिर जन्म लेते हैं । इनका यह बन्ध प्राकृतिक बन्ध है ।



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । १ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । २ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ३ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ४ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ५ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ६ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ७ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ८ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ९ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । १० ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ११ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । १२ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । १३ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । १४ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । १५ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । १६ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । १७ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । १८ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । १९ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । २० ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । २१ ।



इन तीनों बन्धों से छूटना तीन प्रकार का मोक्ष है ।

वैकारिक मोक्ष - त्रिविधो मोक्षः वैकारिक, दाक्षिणिक, प्राकृतिक तीन मोक्ष

भी हैं । स्थूल विषयों से आसक्ति हटाना तथा राजसी तामसी

वासनाओं को छोड़ना वैकारिक बन्ध से मोक्ष है ।

दाक्षिणिक मोक्ष - सूक्ष्म विषयों से आसक्ति हटाना तथा राजसी, तामसी,

सात्त्विक कार्यों में निष्काम भाव होना दाक्षिणिक बन्ध से मोक्ष है ।

प्राकृतिक मोक्ष- आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत भूमि के आनन्द में आसक्ति

से पर बैराग्य द्वारा चित्त को हटाकर स्वरूप स्थिति का लाभ

प्राप्त करना प्राकृतिक बन्ध से मोक्ष है ।

स्थापत्य वेद-वास्तुशास्त्र का वैदिक वाङ्मय - चेतना विज्ञान

से अंतर्बन्ध स्थापित करने के लिए उपर्युक्त तथ्यों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है ।

क्योंकि स्थापत्य वेद के अनुसार जो भी निर्माण होता है, वह पंचमहाभूतों के

संयोजनों का ही परिणाम है । जिसमें चेतना की स्थापना विभिन्न पूजनों व

मंत्रों आदि द्वारा की जाती है । जिसका कि मुख्य उद्देश्य प्रकृति की अनेक

व्यक्त तथा अव्यक्त शक्तियों की श्रेष्ठतम अनुकूलता पाना है । जिससे कि व्यक्ति

या समूहों के निवास वह चाहे एक कुटिया हो, गृहस्थों के भवनों या राजमहल

अथवा देवी-देवताओं के मंदिर इनके माध्यम से श्रेष्ठतम आधि भौतिक, आधि-

दैविक तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त किया जा सके ।



। ई अति ते वाक्ते नति तद्वत् न पुनः निति न

अति नति अतिवाक्ते, अतिवाक्ते, अतिवाक्ते : अतिवाक्ते - अति अतिवाक्ते

अतिवाक्ते अति अतिवाक्ते अतिवाक्ते न निति नति । ई निति

। ई अति न पुनः अतिवाक्ते अतिवाक्ते निति निति

अतिवाक्ते, अतिवाक्ते अति अतिवाक्ते अतिवाक्ते न निति नति - अति अतिवाक्ते

। ई अति न पुनः अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते निति निति

अतिवाक्ते न अतिवाक्ते न निति अतिवाक्ते अतिवाक्ते - अति अतिवाक्ते

अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते

। ई अति न पुनः अतिवाक्ते अतिवाक्ते

अतिवाक्ते - अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते

। ई अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते

न नितिवाक्ते अतिवाक्ते, ई अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते

न नितिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते

अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते

अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते

अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते

अतिवाक्ते, अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते

। ई अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते अतिवाक्ते



## खण्ड - १ । §घ§

:: चेतना विज्ञान परिचय ::  
=====

समस्त विश्व ब्रम्हांड को धारण करने वाली शक्ति चेतना है । वह स्वयं ही स्वयं को जानती है । स्वयं ही स्वयं को प्रकट कर सकती है । स्वयं-भू है । वह निर्गुण निराकार समस्त सम्भावनाओं का क्षेत्र है । सभी की उत्पत्ति उसी से सम्भव है व सभी व्यक्त जगत् उसी में पुनः विलीन भी होता है ।

जैसा "जगत्" शब्द से स्पष्ट है "ज" अर्थात् जन्म होना व "गत्" अर्थात् "जाना" अर्थात् जो व्यक्त होता है व पुनः अव्यक्त हो जाता है अर्थात् प्रत्येक पदार्थ पंच महाभूतों के माध्यम से व्यक्त होता है व पुनः उन्हीं पंच महाभूतों में विलीन हो जाता है । यह समस्त रूपान्तरण उस अव्यक्त चेतना का ही रूपान्तरण है । व्यक्त रूप में प्रकटीकरण व पुनः अव्यक्त में विलीनीकरण उस चेतना की ही स्थितियों की निरन्तरता है ।

इसी चेतना की अव्यक्त शक्ति को निर्गुण निराकार पर ब्रम्ह की सत्ता के रूप में, द्विआयाम में प्रकट होने पर "शब्द ब्रम्ह" के रूप में व त्रिआयाम में प्रकट होने पर "रसो" वैतः व पुनः चतुर्थ आयाम या स्थिति को "शिवम शान्तं अद्वैतं चतुर्थ मान्यते", शिव, शान्त तथा अद्वैत रूप की चतुर्थ स्थिति के रूप में जाना जाता है ।

यही चेतनः सत्ता "एकोऽहम् बहुस्यामि" अर्थात् वह एक अपने को बहुत में व्यक्त करता है, और अलग-अलग व्यक्त सत्ता के गुण उसकी स्थिति प्रकृति के आधार पर भिन्न होते हैं ।







चेतना के मूर्त गुण वैभिन्न्य के कारण शक्ति अर्थात् अव्यक्त ऊर्जाओं के विभिन्न प्रकारों का वर्णन अनेकों सांकेतिक अभिव्यंजनों में निहित है ।

इसी प्रकार प्रकाश को अर्थात् ऊर्जा को ही अभिव्यक्त करता है शब्द "देवता" जो कि "दिव" धातु से निर्मित है "दिव" का अर्थ होता है प्रकाश तो "देवता" अर्थात् प्रकाश से सम्बन्धित शक्ति ।

जिस प्रकार स्फेद प्रकाश को "प्रिज्म" से गुजारने पर वह सात रंगों में विभक्त हो जाता है । और आधुनिक भौतिक विज्ञान के क्षेत्र क्रोमेटोलॉजी में अलग-अलग रंगों के भौतिक व रासायनिक गुणों का वर्णन है यथा लाल रंग में जस्ता तथा पीले रंग में प्रोटीन का बाहुल्य होता है इसी प्रकार अलग-अलग देवताओं के वर्ण-रंग दिये गये हैं तथा उनका पूरा वर्णन उनके अस्त्र-शस्त्र, वाहन, आयुध, परिधान भोजन, §बलि§ आदि उन देवता विशेष की क्षमता तथा क्रिया शक्ति को सांकेतिक रूप में व्यक्त करते हैं, अर्थात् प्रत्येक देवता-चेतना या ऊर्जा के गुण विशेष का प्रतिनिधित्व करता है ।

यही चेतना या ऊर्जा के विभिन्न गुण स्थापत्य वेद के वास्तु शास्त्रान्तर्गत "वास्तु पुरुष मण्डल" के विभिन्न पद देवताओं के द्वारा अभिव्यंजित है ।

इन्हीं देवताओं के चेतना विषय के आधार को विश्लेषित कर वास्तु के विभिन्न पद देवताओं के गुण, धर्म, प्रकृति, व्यवहार को समझकर उसका तर्क स्वीकृत व्यवहारिक उपयोग प्रत्येक निर्माण को प्रकृति की पूर्ण अनुकूलता प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है ।"







व्यक्त प्रकृति का मूल आधार विशुद्ध चेतना है या आधुनिक विज्ञान के आधार पर एकीकृत क्षेत्र है, जो अपने को पंचमहाभूतों के मध्यम से भिन्न - भिन्न रूपों में व्यक्त करती है, जिसकी भिन्नता उस पदार्थ के आधारभूत तत्वों तथा न्यूक्लियस नाभिक के न्यूट्रान, प्रोटान व इसके चारों तरफ भ्रमणशील इलेक्ट्रानों की संख्याओं की भिन्नताओं के कारण भिन्न होता है । तथा पदार्थ के भौतिक रासायनिक गुण तथा उसकी क्षमताओं में परिवर्तन हो जाता है ।

इसी प्रकार की भिन्नता वास्तु पुरुष मण्डल के विभिन्न देवताओं के गुणों में प्रकट होती है, जो समरांगण सूत्रधार भवन निवेश के "पुरुषांग देवता निधण्ड्वादि निर्णय व उसकी बलिदान विधि में उपलब्ध सैतों से स्पष्ट हो सकते हैं ।

---

समरागत् सूत्रधार भवन निवेश अध्याय 17 पेज 78, 79, 80 और अध्याय 18 पेज 81, 82, 83,







:: खण्ड - 2 ::  
-----

वैदिक वांगमय - वेद विज्ञान "चेतना विज्ञान" का वर्गीकरण -  
=====

- वेद
- वेदांग
- उपांग
- ब्राह्मण







अङ्क - 2

:: वैदिक वाङ्मय का वर्गीकरण ::

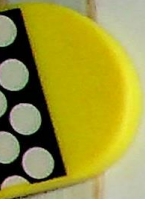
वैदिक वाङ्मय का वास्तविक अर्थ उसको सम्बन्धित भाषा में  
विभक्त करना है, जन्तु महर्षि द्वारा वेदा विज्ञान में उक्त और विस्तार  
कर इसे अपने वेदा विभाग पुन वैदिक के भाग वर्गीकृत करने में विभाग  
किया गया है।

:: खण्ड - 2 ::

वैदिक वाङ्मय - वेद विज्ञान "चेतना विज्ञान" का वर्गीकरण -  
=====

- वेद
- वेदांग
- उपांग
- ब्राह्मण





॥ ३ - ३८ ॥  
- - - - -  
- - - - -

३८ -  
३९ -  
४० -  
४१ -



## खण्ड - 2

## :: वैदिक वाङ्मय का वर्गीकरण ::

वैदिक वाङ्मय का पारंपरिक वर्णन उसको छब्बीस भागों में विभक्त करता है, परन्तु महर्षि प्रणीत चेतना विज्ञान में उसका और विस्तार कर इसे अपने चेतना विषयक गुण वैभिन्न्य के कारण चालीस क्षेत्रों में विभक्त किया गया है ।

## पारंपरिक वैदिक वाङ्मय का वर्गीकरण :-

वेद	-	ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद
वेदांग	-	शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष
उपांग	-	न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, कर्ममीमांसा, वेदान्त,
उपवेद	-	आयुर्वेद, गंधर्ववेद, धनुर्वेद, स्थापत्य वेद, इतिहास, पुराण, स्मृति, उपनिषद्, आरण्यक, ब्राम्हण ।



∴ प्रत्येक एक प्रमाण दर्शाते ∴

यदि प्रमाण सविस्तर विवरण के अभाव में प्रमाण दर्शाते  
 प्रमाणों की एक श्रृंखला में प्रमाणों के अभाव में प्रमाण दर्शाते  
 प्रमाणों की एक श्रृंखला में प्रमाणों के अभाव में प्रमाण दर्शाते  
 प्रमाणों की एक श्रृंखला में प्रमाणों के अभाव में प्रमाण दर्शाते

∴ प्रत्येक एक प्रमाण दर्शाते अभाव में

प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण	-	प्रमाण
प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण	-	प्रमाण
प्रमाण	-	प्रमाण
प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण	-	प्रमाण
प्रमाण	-	प्रमाण
प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण	-	प्रमाण
प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण	-	प्रमाण
प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण	-	प्रमाण



उपर्युक्त वैदिक वाग्मय का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है ।

**ऋग्वेद :-** वैदिक साहित्य के ऋग्वेद को सबसे प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण  
 माना जाता है, तथा इसे ही प्रथम वेद कहा जाता है । आज हमें जो ऋग्वेद  
 संहिता प्राप्त है, उसमें 1028 सूक्त और 10 मंडल है सूक्तों की भाषा से  
 सिद्ध होता है कि रचना अत्यन्त प्राचीन है । प्राचीनतम जो सूक्त है, उनका  
 आधिक्य द्वितीय मंडल से सप्तम मंडल तक मिलता है । जिन्हें वंशानुगत मंडल  
 कहते हैं, इसमें प्रधान रूप से छः ऋषि हैं गृत्समद द्वितीय मंडल में, विश्वामित्र  
 तृतीय मंडल में, वामदेव चतुर्थ मंडल में अत्रि पंचम मंडल में, भारद्वाज षष्ठ मंडल में,  
 और वशिष्ठ सातवे मंडल में । इनमें ऋग्वेद द्वितीय से सातवे मंडल का लेखक माना  
 जाता है, तथा अंगिरा ऋषि के वंशजों द्वारा आठवे मंडल का सूत्र बताया गया  
 है । पहले नवमें तथा दसवें मंडल में आने वाले प्रत्येक सूक्त के ऋषि का नाम  
 मिलता है । परन्तु वास्तव में वैदिक सूक्तों के प्रणेता अज्ञात है ।

ऋग्वेद 10 मण्डलों में या फिर 8 अष्टकों में स्तुतिमय गीतों  
 का संग्रह है या प्रार्थना के गीतों का ज्ञान है । इसमें §10580§ 1/4 ऋचाएँ हैं।  
 153826 शब्द है, तथा 432000 अक्षर प्रयुक्त हुये हैं ।

**यजुर्वेद :-** यजुर्वेद यजुषों का संकलन है, जिसमें यज्ञ से सम्बन्धित विधि  
 तथा नियमों के बारे में ज्ञान है । चरपट्यूह उसकी 86 शाखाएँ मानते हैं तथा  
 पतांजलि 100 शाखाएँ । इसकी दो संहिताएँ हैं ।

§अ§ कृष्ण यजुर्वेद संहिता :- इसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तैत्तरीय,  
 कंठ एवं मैत्रायणी संहिताएँ हैं ।







॥ब॥

शुक्ल यजुर्वेद संहिता - इसकी वाजसनेयी या माध्यन्दिनी तथा

काण्व ये दो संहिताएँ मुख्य हैं ।

सामवेद :- इसमें साम गीतों का संग्रह है, इसमें दो मुख्य भाग हैं ॥१॥ आर्थिक  
 =====  
 तथा ॥२॥ गान । इस वेद से स्वरमाधुरी का ज्ञान होता है । इसकी सहस्र  
 शाखाओं में से अब तीन ही शाखाएँ मिलती हैं ॥१॥ जैमिनीय ॥२॥ राणायनीय  
 ॥३॥ कौथुम ।

अथर्ववेद :- अथर्ववेद संहिता में २० काण्ड हैं, ६३१ सूक्त हैं और ५९८७ ऋचाएँ  
 =====  
 हैं । इसका अर्थ है अथर्वों का वेद या अभिचार के विधानों का ज्ञानमय प्रकार  
 इसमें प्रथम सात काण्डों में अनेकों छोटे-छोटे सूक्त हैं । पहले काण्ड में एक-एक  
 में चार-चार ऋचाएँ हैं, दूसरे काण्ड में एक-एक सूक्त में पाँच-पाँच ऋचाएँ हैं ।  
 तीसरे में एक एक सूक्त में छःछ ऋचाएँ तथा चौथे में सात-सात ऋचाएँ हैं । पाँचवे  
 काण्ड में एक-एक सूक्त में कम से कम आठ तथा अधिक से अधिक १८ ऋचाएँ मिलती  
 हैं । छठवे काण्ड में १४२ सूक्तों में प्रत्येक में तीन-तीन ऋचाएँ हैं । आठवें काण्ड  
 में ११८ सूक्त हैं तथा इनमें ऐसे भी बहुत सूक्त हैं जिनमें एक या दो ऋचाएँ हैं ।  
 आठवे काण्ड से १४वें काण्ड तक और १७वे काण्ड से अठ्ठारहवे काण्ड तक बहुत  
 लम्बे-लम्बे सूक्त हैं । यह वेद आमुष्मिक तथा ऐहिक दोनों प्रकार के फल देता है ।  
 इसकी ९ शाखाओं में से शौनक और पिप्पलाद दो निम्न प्रकार से हैं :-

॥अ॥

शौनक - इसमें कुल २० काण्ड ६३० सूक्त और ५९७७ मंत्र हैं । जिसमें  
 से ५७ सूक्त गद्यात्मक हैं ।

पैप्पलाद शाखा - इस शाखा में शौनक शाखा से कोई विशेष अन्तर नहीं है, केवल  
 कुछ शब्दों के पाठ में अन्तर मिलता है तथा इसमें ब्राह्मण पाठों का तथा अभि-  
 चारादि कर्मों का आधिक्य है ।







शिक्षा :- शिक्षा का अर्थ वेदांग सिखाना इस, वेदांग का सम्बन्ध उच्चारण  
 से है । संहिता पाठ का शुद्ध तथा सही उच्चारण करने के ज्ञान को देने वाली  
 रचना का एक विशेष प्रकार शिक्षा है । शिक्षा का प्रथम निर्देश हमें तैत्तरीय  
 उपनिषद् में प्राप्त होता है । उसमें शिक्षा के वर्णन के छः अध्यायों अक्षर, स्वर  
 मात्रा, की संख्या की गणना का प्रकार, ह्रस्व, गुरू के निर्देश का संविधान,  
 ताल और उच्चारण करते समय शब्दों के मिश्रण की दीक्षा आदि मिलते हैं ।

§2§ कल्प - वेद विहित कर्मों का पूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाला  
 शास्त्र कल्प है । कल्प ब्राम्हण ग्रन्थों के प्रधान विषय से सम्बन्धित है । इन्हें  
 कल्प सूत्र कहा जाता है । इसका प्रादुर्भाव यज्ञ की विधियों को संक्षिप्त और  
 व्यवस्थित करने के लिए हुआ । इसके जो सूत्र श्रौत सूत्र कहलाते हैं, वे कल्प सूत्र,  
 श्रौत यज्ञों के अवसर पर प्रयोग में लाये जाते हैं । तथा जो सूत्र गृह महोत्सवों  
 में प्रयोग होते हैं वे गृहस्थ सूत्र कहलाते हैं । श्रौत सूत्रों का विषय श्रुति प्रतिष्ठादित  
 महत्त्वपूर्ण यज्ञों का क्रमबद्ध तरीके से वर्णन करना है । गृहस्थ सूत्र के विधान नित्य  
 प्रति के धार्मिक विधानों से सम्बद्ध है ।

§3§ व्याकरण - वेद पुरुष के मुख के रूप में वेदांग को माना जाता है,  
 ऋग्वेद में § 4-58-6§ व्याकरण को प्रतीक रूपम बृष्म से किया गया है । जिस  
 बृष्म के चार सींग हैं - नाम, आख्यात, उपसर्ग, तथा निपात । भूत वर्तमान  
 और भविष्य ये तीन काल ही उसके तीन चरण हैं । उसके दो सिर हैं सुप और  
 तिङ तथा सात विभक्तियाँ ही सात हाथ हैं । यह उर, काण्ड और सिर तीन  
 स्थान में बद्ध है । पदों की मीमांसा करने वाला शास्त्र ही व्याकरण है ।

§व्याक्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्।



... - : ...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...

... - ... [2]

...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...

... - ... [3]

...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...  
 ...

[...]



§4§ निरुक्त - यह निघण्टु की सफल टीका कही जा सकती है, यह ऋग्वेद संहिता की ठीक उस रूप में पूर्व कल्पना प्रस्तुत करता है । निघण्टु शब्दों की सूचियाँ पांच प्रकार की मिलती हैं और इन सूचियों को तीन भागों में विभाग किया गया है । पहला भाग नैघंटुक कांड । दूसरा भाग नैगम कांड । तीसरा देवत कांड §पहले भाग में§ नैघंटुक कांड§ तीन सूचियाँ मिलती हैं, जिनमें वैदिक शब्दों को एक निश्चित विचार एवं निश्चित दृष्टि से समावेश किया गया है, इसमें पृथ्वी के लिये इक्कीस नाम, स्वर्ण के लिए पन्द्रह नाम, वायु के सोलह, जल का एक नाम, एवं वेग के लिए छब्बीस क्रिया विशेषण एवं विशेषण, गमन के लिये एक सौ बाइस क्रियाएँ और अधिकता के लिए बारह नामों का विवरण मिलता है । दूसरे भाग §नैगम कांड में§ वेद में मिलने वाले संदिग्ध अर्थवाले शब्दों का तथा विशेष रूप से कठिन शब्दों की तालिका मिलती है । तीसरे भाग में §देवतकांड§ पृथ्वी, अंतरिक्ष तथा स्वर्ण के देवताओं का वर्गीकरण मिलता है ।

§5§ छन्द -

वैदिक छन्द अक्षरों की गणना पर निर्भर रहते हैं यही उनकी विशेषता है । इन छन्दों में लघु-गुरु के क्रम का कोई बन्धन नहीं होता है । छन्दों के ज्ञान के बिना मंत्रों का उच्चारण प पाठ ठीक ढंग से नहीं किया जा सकता । प्रत्येक सूक्त में ऋषि देवता तथा छन्द का ज्ञान होना आवश्यक होता है । मुख्य वैदिक छन्द सात हैं - गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुभ एवं जगती । शेष इन्हीं सातों के अवान्तर भेद भी संहिताओं में प्राप्त होते हैं ।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



§4§ निरुक्त - यह निघण्टु की सफल टीका कही जा सकती है, यह ऋग्वेद संहिता की ठीक उस रूप में पूर्व कल्पना प्रस्तुत करता है । निघण्टु शब्दों की सूचियाँ पांच प्रकार की मिलती हैं और इन सूचियों को तीन भागों में विभाग किया गया है । पहला भाग नैघंटुक कांड । दूसरा भाग नैगम कांड । तीसरा देवत कांड §पहले भाग में§ नैघंटुक कांड§ तीन सूचियाँ मिलती हैं, जिनमें वैदिक शब्दों को एक निश्चित विचार एवं निश्चित दृष्टि से समावेश किया गया है, इसमें पृथ्वी के लिये इक्कीस नाम, स्वर्ण के लिए पन्द्रह नाम, वायु के सोलह, जल का एक नाम, एवं वेग के लिए छब्बीस क्रिया विशेषण एवं विशेषण, गमन के लिये एक सौ बाइस क्रियाएँ और अधिकता के लिए बारह नामों का विवरण मिलता है । दूसरे भाग §नैगम कांड में§ वेद में मिलने वाले संदिग्ध अर्थवाले शब्दों का तथा विशेष रूप से कठिन शब्दों की तालिका मिलती है । तीसरे भाग में §देवतकांड§ पृथ्वी, अंतरिक्ष तथा स्वर्ग के देवताओं का वर्गीकरण मिलता है ।

§5§ छन्द -

वैदिक छन्द अक्षरों की गणना पर निर्भर रहते हैं यही उनकी विशेषता है । इन छन्दों में लघु-गुरु के क्रम का कोई बन्धन नहीं होता है । छन्दों के ज्ञान के बिना मंत्रों का उच्चारण प पाठ ठीक ढंग से नहीं किया जा सकता । प्रत्येक सूक्त में ऋषि देवता तथा छन्द का ज्ञान होना आवश्यक होता है । मुख्य वैदिक छन्द सात हैं - गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुभ एवं जगती । शेष इन्हीं सातों के अवान्तर भेद भी संहिताओं में प्राप्त होते हैं ।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



## ४६४ ज्योतिष-

वेद पुरुष के चक्षु के रूप में ज्योतिष को जाना जाता है । ग्रह नक्षत्र, तिथि, वार, पक्ष, मास, ऋतु, एवं वर्ष आदि काल के सभी खण्डों के साथ-साथ इसमें के उत्तरायण एवं दक्षिणायन के अवसर पर सूर्य और चन्द्रमा की अवस्था के बारे में तथा सत्ताइस नक्षत्रों से समावृत्त चन्द्रमा की अवस्थिति का निर्देश एवं उनकी गणना के नियमों का निर्माण भी इसमें होता है ।

### उपनिषद :-

उपनिषद का अर्थ होता है - समीप बैठने वाला । क्योंकि उप का अर्थ समीप तथा निषद का अर्थ बैठने वाला । अर्थात् परम तत्त्व के समीप बैठने वाला ज्ञान ही उपनिषद है या फिर उपनिषद का विषय है । उपनिषद ग्रन्थों में योगियों, सन्यासियों आदि का ईश्वर, जगत तथा मनुष्य के प्रति ध्यान नेत्रों से साक्षात्कार किया हुआ ज्ञान है । एवं साथ ही साथ प्राचीनतम भारतीय दर्शन शास्त्र छिपा है ।

### आरण्यक :-

7 इनमें अरण्य के महर्षियों का या वानप्रस्थियों के यज्ञों, व्रत तथा होत्र आदि के बारे में जानकारी है । इन आरण्यकों में यज्ञों के आध्यात्मिक रूप का एवं आधि दैविक रूप का अत्यन्त सरल एवं संक्षिप्त शैली में विवेचन किया गया है ।







ब्राह्मण -

ब्रह्म का अर्थ यज्ञ भी होता है । यज्ञों का प्रतिपादन एवं उनकी व्याख्या करने के कारण ही इन ग्रन्थों का नाम ब्राह्मण पड़ा । कहते हैं कि मंत्रों के दृष्टा ऋषि थे, परन्तु ब्राह्मणों के दृष्टा आचार्य थे । इनमें आध्यात्मिक तत्वों का, यज्ञों की विधियों का एवं अलग-अलग याज्ञिक विधानों का पूरा वर्णन प्राप्त होता है । इसमें वैदिक अनुष्ठानों का क्रियात्मक रूप सम्मिलित है ।

इतिहास :-

इसके अन्तर्गत रामायण महाभारत आदि आते हैं ।

पुराण :-

पुराणों की साहित्य - परम्परा बहुत ही प्राचीन है । तैत्तिरीय आरण्यक में ब्राह्मणों, इतिहासों, पुराणों की चर्चा हुई है । परम्परा के अनुसार प्रमुख पुराण 18 हैं एवं उपपुराण 18 हैं । इनके नामों को लेकर मतभेद हैं, परन्तु मत्स्य पुराण के अनुसार निम्न 18 नाम हैं, ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड, एवं ब्राह्माण्ड । चौदह हजार श्लोकों से युक्त वायु पुराण भगवान् विष्णु को प्रिय है । उस पुराण में वायु ने श्वेत कल्प के प्रसंग को लेकर धर्मों का निरूपण किया है । जिस पुराण में गायत्री के प्रसंग से सविस्तार धर्म का निरूपण तथा वृत्रासुर वध का वर्णन किया गया है, उसे भागवत पुराण कहते हैं । उससे सारस्वत कल्प तक अठारह हजार श्लोक हैं । जिस पुराण में नारद ने बृहत्कल्प के प्रसंग से धर्मों की व्याख्या की है वह पचीस हजार श्लोकों वाला



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



नारदीय पुराण है । जिस पुराण में शत्रुओं के धर्माधर्म सम्बन्ध में विचार किया गया है, वह नौ हजार श्लोकों से युक्त मार्कण्डेय पुराण है । अग्नि ने जिस पुराण को वशिष्ठ को सुनाया है, वह अग्नि पुराण है । उसमें बारह हजार श्लोक हैं और उससे समस्त विधाओं का बोध होता है । जिसे शंकर ने मनु को सुनाया था, सूर्य से उत्पन्न होने वाला वह भविष्य पुराण है, इसमें चौदह हजार श्लोक हैं । सविर्षि ने नारद की जो सुनाया था - वह अठारह सहस्र श्लोकों वाला ब्रह्मवैवर्त पुराण है, उसमें स्थंतर का वृत्तान्त और बाराह का चरित्र वर्णित है । जिस पुराण में अग्नि लिंग के बीच में अवस्थित होकर भगवान् शंकर ने धर्मों का निरूपण किया था उसे लिंग पुराण कहते हैं । इसमें आग्नेय कल्प तक ग्यारह हजार श्लोक हैं । मानव प्रवृत्ति से लेकर वाराह चरित्र पर्यन्त जिस पुराण को भगवान् विष्णु ने भूमि को सुनाया वह चौबिस हजार श्लोक वाला वाराह पुराण है । स्कन्ध के द्वारा कही हुई स्कन्द पुराण में चौरान्धे हजार श्लोक हैं । इसके तत्पुरुष कल्प में धर्मों की व्याख्या की गई है । वामन पुराण में दस हजार श्लोक हैं । उसमें धौम कल्प में भगवान् विष्णु की कथा वर्णित है । इसमें धर्म, अर्थ आदि का बोध होता है । कूर्म भगवान् द्वारा सुनाये गये कर्म पुराण में आठ हजार श्लोक हैं । इसके रसातल कल्प में इन्द्रधुम्न का प्रसंग आता है । कल्पादि से लेकर मत्स्य पुराण में तेरह हजार श्लोक हैं । इसे मत्स्य भगवान् ने मनु को सुनाया था । गरुड पुराण में आठ हजार श्लोक हैं । इसे विष्णु ने सुनाया था । इसके तार्क्षकिय में विश्वाण्ड से लेकर गरुड की उत्पत्ति तक का वर्णन है । ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड महात्म्य को अपना वर्णनीय विषय बनाकर जिस पुराण को कहा था ब्राह्माण्ड पुराण है उसमें बारह हजार श्लोक हैं । इस प्रकार कुछ मुख्य पुराणों का वर्णन है ।

#### 1- अग्नि पुराण







स्मृति -

स्मृति शब्द को दो अर्थों में प्रयुक्त किया गया है । एक अर्थ में यह वेद के वांगमय से अलग ग्रन्थों जैसे पाणिनि के व्याकरण, श्रौत, गृह्य एवं धर्म सूत्रों जैसे महाभारत, मनु, याज्ञवल्क्य एवं अन्य ग्रन्थों से सम्बन्धित है । दूसरे अर्थ में इस धर्म शास्त्र के अर्थ में लिया जाता है । स्मृतियों की संख्याओं के बारे में मतभेद हैं । विश्वसनीय स्मृतियाँ कई युगों की कृतियाँ हैं, कुछ तो पूर्णतया गद्य में कुछ मिश्रित है ऽ गद्य-पद्य दोनों में और अधिकांश पद्य में है ।

न्याय -

प्रमाणों द्वारा विषयों के परीक्षण को न्याय कहते हैं । "नीयते विवक्षितार्थं सिद्धिरनेन इति न्यायः । " वेदों के अर्थों को निश्चित करने के लिए मीमांसा की तरह न्याय का भी उद्भव हुआ । मीमांसा वेदों के वाक्यों के अर्थ का निर्धारण करती है, न्याय उनके पदार्थों और प्रमाणों का । न्याय का मुख्य कार्य प्रमाण मीमांसा है । प्रमाण प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वा, भास, छल जाति तथा निग्रह स्थान इन 16 तत्वों के ज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति का विधान न्याय शास्त्र में किया गया है । दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष और मिथ्या ज्ञान के उत्तरोत्तर व्यक्तिक्रम से नष्ट होने पर अपवर्ग होता है । जो निःश्रेयस है । ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने के लिए न्यायिक प्रमाण देते हैं । वे एक परमात्मा तथा अनेक आत्मा को मानते हैं । ज्ञान को वे आत्मा का एक गुण मानते हैं । ईश्वर को उसमें जगत का निमित्त कारण मात्र माना जाता है । प्रमाण चार हैं, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ।<sup>1</sup>

हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ संख्या - 358







वैशेषिक :-

वैशेषिक शब्द विशेष से बना है । "विशेष" नामक पदार्थ की विशिष्ट कल्पना करने के कारण इस दर्शन को वैशेषिक कहा जाता है । वैशेषिक ग्रन्थों में सबसे प्राचीन कणाद, कणमुक् या उलूक का लिखा वैशेषिक सूत्र है, जो न्याय सूत्र से प्राचीन माना जाता है । तत्त्ववाद में वैशेषिक परमाणुवादी हैं । इनमें चार प्रकार के परमाणु पृथ्वी, अप, तेज और वायु माने जाते हैं । प्रत्येक प्रकार के परमाणु संख्या में अनंत हैं । उनमें अपना "विशेष" तत्व भी रहता है । इन्हीं के विभिन्न संघात द्वारा जगत की उत्पत्ति होती है । कार्य कारण में पहले से विद्यमान नहीं रहता है, वह नया होता है । कार्य कारण से भिन्न नयी वस्तु का आरम्भ करता है । इसी लिये इसे आरम्भवाद कहते हैं ।

कुल पदार्थ छः हैं - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ।  
द्रव्य- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन ये नौ हैं ।  
गुण चौबीस हैं । 6 द्रव्यों से भिन्न कालान्तर में अभाव को भी द्रव्य माना गया है, और वह प्राग्भाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव तथा अन्योन्याभाव- चार प्रकार का माना गया है ।

वैशेषिक दर्शन ही भारतीय दर्शनों में भौतिक शास्त्र का निरूपण सर्वाधिक करता है । वस्तुतः वह प्राचीन भौतिक शास्त्र का दर्शन था । पर इससे यह न समझना चाहिए कि वह मोक्ष दर्शन नहीं है । इसका भी प्रयोजन मीमांसा की भाँति धर्म की व्याख्या करना और मोक्ष की प्राप्ति का साधन बताना है । ज्ञान मार्ग द्वारा मोक्ष प्राप्ति का विधान करना वैशेषिक का मुख्य उद्देश्य है । आरम्भ में







प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण वैशेषिक को मान्य थे बाद में उसे शब्द और उपमान भी मान्य हो गये ।<sup>1</sup>

सांख्य -

सांख्य, दर्शन की एक पद्धति है, जिसके आदि प्रवर्तक कपिल हैं । इस दर्शन को सांख्य क्यों कहते हैं ? इस प्रश्न के विविध उत्तर हैं । पहला कपिल दर्शन में सांख्य अर्थात् सम्यक ज्ञान की प्रधानता है । सांख्य का अर्थ है सम्यक ख्याति का ज्ञान । यह विशुद्ध ज्ञान मार्ग है । प्रत्यक्ष और अनुमान ही इसके मुख्य प्रमाण हैं । यद्यपि कालान्तर में श्रुति प्रमाण या वेदों का प्रमाण भी इसमें मान्य सम्झा गया, तथापि प्राथमिकता तर्क या ज्ञान की ही रही है । गीता में सांख्य को ज्ञान मार्ग का ही पर्याय कहा गया है । शंकराचार्य भी सांख्य को तार्किक कहते हैं । सांख्या या ज्ञान की प्रधानता के कारण ही इस दर्शन को सांख्य कहा गया । दूसरे विचार में सांख्य दर्शन का यह नाम इसलिये पड़ा कि इसमें तत्वों की संख्या या गिनती की गई है । मौलिक तत्व कितने हैं इसका जो शास्त्र विचार करता है, उसको सांख्य कहते हैं । परन्तु आज जो भी दर्शन इन तत्वों की गिनती का विचार करते हैं, उनको हम सांख्य नहीं कह सकते । सांख्य भारत का पहला दर्शन है, जिसमें भौतिक तत्वों की संख्या की गई है । उपनिषदों का पहला समन्वयक करने वाला दर्शन यही सांख्य है । इसमें उपनिषदों के मौलिक तत्वों को विकासक्रम में संजोया गया है ।

सांख्य दर्शन का प्राचीनतम ग्रन्थ जो उपलब्ध है, ईश्वर कृष्ण की "सांख्य कारिका" है । इसके अनुसार चार प्रकार के तत्व हैं - प्रकृति, विकृति,



एतद्वाचं हि नो ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

१. अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं

- पञ्च

॥ अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

॥ अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा

अथ हि ब्रह्म हि जगत्सर्वं तन्मिमांसा



दोनों या उभय, और न प्रकृति न विकृति, अर्थात् अनुभव । प्रकृति कहते हैं, मूल कारण को । यह अचेतन है, सत्य, रज, तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था । यह प्रसववती है अर्थात् इससे कुछ वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, जिनको हम विकृति कहते हैं । इससे पहले महत उत्पन्न होता है, महत से अहंकार, अहंकार से युगपत तीन प्रकार के तत्त्व प्रकट होते हैं । §1§ मन §2§ इन्द्रियों, §3§ 5 तन्मात्राएँ । इन्द्रियों पाँच कमेन्द्रियों हैं अर्थात् - हस्त, पाद, मुख, वायु और उपस्थ, 5 ज्ञानेन्द्रियों क्रमशः शब्द तन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रस तन्मात्रा और गन्ध तन्मात्रा है । इनमें, परवर्ती तन्मात्राओं में पूर्ववर्ती तन्मात्राएँ विद्यमान रहती है । फिर इन्हीं पाँच तन्मात्राओं से क्रमशः आकाश, वायु, तेज, अप और पृथ्वी इन पाँच महाभूतों का विकास होता है । महत, अहंकार और 5 तन्मात्राएँ इन सात तत्त्वों को प्रकृति और विकृति दोनों कहते हैं । क्योंकि एक ओर से उत्पादक हैं दूसरी ओर उत्पन्न । मन 10 इन्द्रियों और 5 महाभूत इन 16 तत्त्वों को केवल विकृति कहते हैं, क्योंकि ये केवल कार्य या उत्पन्न हैं कारण या उत्पादक नहीं । इस प्रकार । प्रकृति 6 प्रकृति-विकृति और 16 विकृति और इन 24 तत्त्वों से पृथक् बहुत से पुरुष हैं, जो न प्रकृति हैं न विकृति इस तरह कुल 25 तत्त्व हैं । मूलतः प्रकृति और पुरुष ये ही दो तत्त्व हैं । पुरुष से सानिध्य से प्रकृति की साम्यावस्था भंग होती है और तब उसमें गति आती है, जिसके फलस्वरूप महादाविक्रम से सभी अन्य तत्त्वों का विकास होता है । पाँच महाभूतों तथा मन और इन्द्रियों के ही विभिन्न संघातों से ही "नाना जीवो येन" जगत बनता है । पुरुष प्रकृति से मूलतः अनासक्त है । पर जगत में वह प्रकृति के कार्यकलाप में बंधा प्रतीत होता है । ज्ञान के इस बन्धन को दूर करके पुरुष का अपने अस्तित्व का अनुभव करना ही मोक्ष या कैवल्य है । पुरुष दृष्टा और भोक्ता दोनों है, किन्तु वह कर्ता नहीं है । कैवल्य में पुरुष अपनी शक्ति तथा योग शक्ति से ज्ञान तथा आनन्द प्राप्त करता है ।







विकास क्रम का व्यक्तिक्रम या विपरीत क्रम तिरोभाव या प्रलय है । विकासक्रम में सांख्य सत्कार्य वाद या प्रकृति-परिणय वाद के सिद्धान्त को मानता है, जिसके अनुसार कार्य कारण में सर्वदा पूर्व से ही विद्यमान रहता है। कार्य कारणावस्था का व्यक्त रूप ही है ।

योग-

योग एक सर्वभौम धर्म है, जो तत्त्व, ज्ञान, स्वयं अनुभव द्वारा प्राप्त करना सिखलाता है और मनुष्य को उसके अन्तिम ध्येय तक पहुँचाता है । योग स्थूलता से सम्ममता की ओर जाना अर्थात् बाहर से अन्तर्मुख होना है । चित्त की वृत्तियों के द्वारा हम स्थूलता की ओर जाते हैं अर्थात् बहिर्मुखा होते हैं । जितनी वृत्तियों बहिर्मुख होती जायेगी उतनी ही उनमें रज और तम की मात्रा बढ़ती जायेगी और जितनी वृत्तियों अन्तर्मुक्त होती जायेगी, उतना ही रज और तम के तिरोभाव पूर्वक सत्त्व का प्रकाश बढ़ता जायेगा । जब कोई भी वृत्ति न रहे तब शुद्ध परमात्मास्वरूप शेष रह जाता है । योग के तीन मुख्य विभाग किये जा सकते हैं। १। ज्ञान योग २। उपासना योग ३। कर्म योग,

योग दर्शन के चार पाद हैं और 195 सूत्र हैं । समाधिपाद 51, साधना पाद में 55, विभूतिपाद में 55, और कैवल्यवाद में 34।

योग के आठ अंग हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ।







कर्म मीमांसा :-

कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड, तथा ज्ञान काण्ड इन तीनों काण्डों के वैदार्थ विषयक विचार को मीमांसा कहते हैं। मीमांसा शब्द "मान ज्ञान" से जिज्ञासा अर्थ में माने जिज्ञासायाम" वार्तिक की सहायता से निष्पन्न होता है। मीमांसा के दो भेद हैं - पूर्व मीमांसा, और उत्तर मीमांसा। पूर्व मीमांसा में कर्मकाण्ड तथा उत्तर मीमांसा में ज्ञानकाण्ड पर विचार किया गया है। उपासना इन दोनों में सम्मिलित है।

पूर्व मीमांसा :-

मीमांसा का प्रथम सूत्र है - "अथातो धर्म जिज्ञासा" अर्थात् अब धर्म की जिज्ञासा करते हैं। मीमांसा के अनुसार धर्म की व्याख्या वेद विहित, शिष्टों से आचरण किये हुये कर्मों में अपना जीवन ढालना है। इसमें सब कर्मों को यज्ञों तथा महायज्ञों के अन्तर्गत कर दिया गया है। महायज्ञों तथा यज्ञों द्वारा ब्राह्मण शरीर बनता है। वे यज्ञा तथा महायज्ञा वेदों में बतलाई हुई विधि के अनुसार होने चाहिये इनकी सिद्धी के लिये "शब्द" अर्थात् आगम प्रमाण ही माना है। जो वेद हैं वेद के पाँच प्रकार के विषय है - विधि, यंत्र, नामधेय, निषेध तथा अर्थवाद, इन पाँचों विषयों के होने पर भी वेद का तात्पर्य विधि वाक्यों में ही है।

मीमांसा ग्रन्थ सब दर्शनों में सबसे बड़ा है। इसके सूत्रों की संख्या 2644 तथा अधिकरणों की 909 है। ये सूत्र अन्य सब दर्शनों के सूत्रों की सम्मिलित संख्या के बराबर है। द्वादश अध्यायों में धर्म के विषय में ही विस्तृत विचार



विचार विधि से उपाय कायम, उपाय उपाय, उपाय

विचार का उपाय तमीमि । उपाय तमीमि कि उपाय उपाय मेर

विचार उपाय मेर तमीमि कि उपाय उपाय मेर

तमीमि मेर । तमीमि उपाय उपाय, तमीमि मेर - उपाय उपाय मेर । उपाय

। उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय

। उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय

-: तमीमि मेर

मेर उपाय उपाय मेर तमीमि - उपाय उपाय उपाय तमीमि

विचार, उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय

विचार उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय

उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय

उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय

। उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय

उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय

। उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय

। उपाय

उपाय उपाय उपाय । उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय तमीमि

तमीमि उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय

उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय उपाय



किया गया है । पहले अध्याय का विषय है - धर्म विषयक प्रमाण, दूसरे का भेद § एक धर्म से दूसरे धर्म का पार्थक्य § तीसरे का अंगत्व, चौथे का प्रयोज्य प्रयोजक भाव, पांचवे का कर्म अर्थात् कर्मों में आगे पीछे होने का निर्देश, छठे का अधिकार § यज्ञ करने वाले पुरुष की योग्यता §, सातवे तथा आठवें का अतिदेश § एक कर्म की समानता पर अन्य कर्म का विनियोग § नवे का ऊह, दसवे का बाध, ग्यारहवें का तन्त्र तथा बारहवें की विषय प्रसङ्ग है ।

§2§ उत्तर मीमांसा :- उत्तर मीमांसा को ब्रह्मसूत्र, शारीरिक सूत्र ब्रह्म-मीमांसा तथा वेद का अन्तिम तात्पर्य बतलाने से वेदान्त दर्शन और वेदान्तमीमांसा भी कहते हैं । इस दर्शन के चार अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय चार पदों में विभक्त है जो इस प्रकार है :-

§1§ पहले अध्याय का नाम समन्वय अध्याय है क्योंकि इसमें सारे वेदान्त वाक्यों का एक मुख्य तात्पर्य ब्रह्म में दिखाया गया है । इसके पहले पादों में उन वाक्यों पर विचार है जिनमें ब्रह्म का चिन्ह सर्वज्ञतादि स्पष्ट है । दूसरे में उन पर विचार है जिनमें ब्रह्म का चिन्ह स्पष्ट है और तात्पर्य ज्ञान में है । चौथे में संदिग्ध पदों पर विचार है ।

§2§ दूसरे अध्याय का नाम अविरोध अध्याय है । क्योंकि इसमें इस दर्शन के विषय का तर्क से श्रुतियों का परस्पर अविरोध दिखाया गया है । इसके पहले पाद में इस दर्शन के विषय का स्मृति और तर्क से अविरोध, दूसरे में विरोधी तर्कों के दोष तीसरे में पंचमताभूत के वाक्यों का परस्पर अविरोध और चौथे में लिङ्ग शरीर विषयक वाक्यों का परस्पर अविरोध दिखाया गया है ।







3. तीसरे अध्याय का नाम साधन अध्याय है, क्योंकि इसमें विद्या के साधनों का निर्णय किया गया है। इसके पहले पाद में मुक्ति से नीचे के फलों में त्रुटि दिखाकर उनसे वैराग्य, दूसरे में जीव और ईश्वर में भेद दिखाकर ईश्वर को जीव के लिये फल दाता होना तीसरे में उपासना का स्वरूप और चौथे पाद में ब्रह्म दर्शन के बेहिरङ्ग, साधनों का वर्णन है।

4. चौथे अध्याय में विद्या फल का निर्णय दिखाया है, इसलिए इसका नाम फलाध्याय है। इसके पहले पाद में जीवन्मुक्ति, दूसरे में जीवन्मुक्त की मृत्यु, तीसरे में उत्तर गति और चौथे में ब्रह्म प्राप्ति और ब्रह्म लोक का वर्णन है।

अधिकरण :- पादों में जिन जिन अवान्तर विषय पर विचार किया गया है, उनका नाम अधिकरण है। अधिकरणों के 10 विषय हैं, ईश्वर, प्रकृति, जीवात्मा, पुर्नजन्म, मरने के पीछे की अवस्थाएँ, कर्म, उपासना, ज्ञान, बन्ध, और मोक्ष § 18

मीमांसा में कर्म :- पूर्व मीमांसा या उत्तर मीमांसा के बारे में जानने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि मीमांसा में कर्म या क्रिया का प्रधान महत्त्व है। यह कर्म और उसके फल को बिना ईश्वर के अपूर्व या नियोग की मदद से सम्बन्धित करती है, और निष्काम कर्म करने पर जोर देती है, इस अर्थ में मीमांसा की शिक्षाएँ सदैव ग्राह्य हैं। वस्तुतः कर्म का उच्छेद नहीं हो सकता और इसीलिये किसी न किसी अर्थ में कर्म मीमांसा की या मीमांसा में कर्म की मान्यता रहेगी।

---

§ 18 ग्रन्थ :- पातञ्जल योग प्रदीप लेखक श्री स्वामी ओमानन्द तीर्थ।

प्रकरण 2 पृष्ठ 26 के दूर में से। सहायक ग्रन्थ हिन्दी साहित्य कोश।







वेदान्त :- वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है वेद का अन्त अर्थात् अन्तिम भाग । वेदों के अन्तिम भाग उपनिषद् नामक ग्रन्थ है, अतः उनको वेदान्त कहा जाता है । पर उपनिषद् का स्वयं का अर्थ क्या है ? शंकराचार्य का कहना है कि जो बन्धक को काटे वही ज्ञान उपनिषद् है । इस प्रकार तत्त्व ज्ञान के अर्थ में उपनिषद् का प्रयोग होने लगा । तब वेदान्त भी इसी तत्त्व ज्ञान के अर्थ में उपनिषद् का प्रयोग होने लगा । तब वेदान्त भी इसी तत्त्व ज्ञान का समानार्थक हो गया, और उसका अर्थ किया गया - वह विद्याया शास्त्र जो वेद या मौखिक ज्ञान के अन्त में अर्थात् परे हो- यहाँ पर वेदान्त शब्द अंग्रेजी के "मेटा फिजिक्स" अर्थात् भौतिक विज्ञान के परे वाला ज्ञान हो गया । उपनिषदों के या वेदों के तत्त्व ज्ञान को एकत्र समन्वित करने वाले बादरायण ने ब्रह्म सूत्र या "वेदान्त सूत्र" लिखा । प्रायः उनके दर्शन को वेदान्त दर्शन कहते हैं उपनिषदों से वह स्वयं उपनिषद् है, अतः इसके दर्शन को भी वेदान्त दर्शन कहा जाता है । "उपनिषद्" "ब्रह्मसूत्र" और "गीता" इन तीनों को या इसमें से किसी को प्रधान मानकर चलने वाले दार्शनिकों के दर्शन को भी वेदान्त कहा जाता है । आजकल वेदान्त शब्द का प्रयोग साधारणतः इसी अर्थ में होता है । शंकर, भास्कर, रामानुज, निम्बार्क, मध्व, श्रीकृष्ण, श्रीपति, बल्लभ, विज्ञानभिक्षु, बलदेव और रामानन्द "ब्रह्मसूत्र" ने प्रसिद्ध भविष्यकार हुए हैं । इनके दर्शनों को भी वेदान्त कहना युक्ति युता ही है । इन सभी भाष्यकारों में शंकराचार्य सबसे प्राचीन है । अतः प्रायः उनके दर्शन को ही बादरायण का सच्चा दर्शन माना जाता है । वेदान्त प्रायः शंकराचार्य के दर्शन के अर्थ में रूढ़ ही चला है । सामान्यतः पाश्चात्य देशों में और अपने देश में भी लोग शंकर के दर्शन को भी वेदान्त समझते हैं ।







यद्यपि वह अद्वैत वेदान्त ही है । अन्य वेदान्त या तो वैष्णव वेदान्त के नाम से या शैव वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध है ।

ब्रह्मसूत्र के सभी भाष्यकारों में इस बात का मतैक्य कि वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त "ब्रह्मवाद" है और इसकी सुन्दर तथा पर्याप्त अभिव्यक्ति, ब्रह्म सूत्र के प्रथम चार सूत्रों में या चतुःसूत्री में हो गयी है ।" अर्थात् ब्रह्मजिज्ञासा "जन्माद्यस्य यतः" शास्त्र योनित्वात् और "तत्तु समन्वयात्" ये ही चार सूत्र हैं। इनके अर्थ इस प्रकार से हैं । §1§ वेदान्त समझने के लिए ब्रह्म जिज्ञासा होनी चाहिए । यह स्वतन्त्र शास्त्र है । §2§ ब्रह्म वह है जो जगत् का मूल स्त्रोत है, आधार तथा लक्ष्य है । जगत् उसी से निकला है । उसी में है और उसी में इसका लय भी होगा §3§ ब्रह्म को शास्त्र से ही, अर्थात् वेद उपनिषद् से ही जाना जा सकता है, अन्य प्रमाण से नहीं । §4§ वेद उपनिषद् का समन्वय वेदान्त की शिक्षा में होता है अन्य दर्शनो की शिक्षा में नहीं ।

इस प्रकार उपर्युक्त वैदिक वाङ्मय के विभिन्न क्षेत्रों के अध्ययन से यह पता चलता है, कि मूल रूप से इसमें विशुद्ध चेतना, ब्रह्म, तत्पश्चात् उसके विभिन्न रूपों में प्रकट होने तथा प्रकट पदार्थ रूप के मनुष्य रूप के जन्म से पुनः उसी मोक्ष रूप अर्थात् उसी समस्त श्रृष्टि के मूल स्त्रोत अव्यक्त चेतना जो कि ब्रह्म स्वरूप है, हो जाने के लिए आवश्यक प्रक्रियाओं का बंधन है । व्यक्ति

---

ग्रन्थ - हिन्दी साहित्य कोश पृष्ठ संख्या 800 से 801 तक ।







के जन्म से उसके अंतिम संस्कार तक उसको उस परम्ब्रह्म तत्त्व अर्थात् मोक्ष पाने के लिए किस प्रकार की प्रक्रियाएँ बौद्धिक चिन्तन तथा भौतिक पदार्थों का समस्त जीवन में श्रेष्ठतम प्रयोग तथा विभिन्न उर्जाओं और शक्तियों का पौराणिक आख्यानो के माध्यम से वर्णन है । इन सबका मूल आधार माध्यम मानव शरीर है । जिस प्रकार " शरीर माध्यमं खलुः धर्म साधनम् " अतः यदि शरीर को प्रकृति की पूर्ण अनुकूलता मिलेगी तो ही शरीर का पूर्ण विकास संभव है । इसी आयोजन के लिए स्थापत्य वेद - वास्तु शास्त्र में दिशाओं आकारों अनुपातों आदि के व्यक्ति विशेष तथा समूह विशेषों के आधार पर उनके लिए निर्माण वह चाहे कुटिया हो, अथवा गृहस्थो के घर हो या विभिन्न प्रकार के नगर नियोजन व देव प्रसाद, इन सबका अत्यन्त व्यापक ज्ञान अन्तरनिहित है। जिस प्रकार एक साधक साधना भी करता है तो उसके लिए उचित दिशा, उचित वातावरण आवश्यक है । जिसका विधान स्थापत्य वेद देता है ।

इस प्रकार समस्त वैदिक वांगमय उस मूल चेतनसत्ता को प्राप्त करने के ही माध्यम है । जिन्हें ऋग्वेद मंत्रों से यजुर्वेद छंदों से सामवेद सामगायन से और समस्त वेदांग उनके उपयोगों के प्रकारों की विधि का वर्णन करके एवं उपांग उनकी मीमांसा तथा चिन्तन करके, तथा इतिहास, पुराण, स्मृतियों आदि अपने साकेतिक अभिव्यंजनों, आख्यानो द्वारा उनकी महत्ता तथा पूर्णता स्थापित करती हैं । जिसके लिए शरीर को सुपात्र बनाने के लिए स्थापत्यवेद वास्तुशास्त्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।







खण्ड - 3

मानवीय शारीरिक संरचना के संदर्भ में

:: खण्ड - 3 ::

=====

मानवीय शारीरिक संरचना - चेतना के संदर्भ में

=====

- शरीर के विभिन्न अंग चेतना के संदर्भ में
- अंगों की चेतना विषयक संज्ञाएं
- वास्तु पुरुष के विभिन्न अंग
- वास्तु पुरुष के विभिन्न अंगों पर स्थापित देवताओं का परिचय
- देवताओं का शारीरिक चेतना से अंतर्सम्बन्ध
- गुणों से अन्तर्सम्बन्ध

शरीर के अंग

चेतना के संदर्भ में

1.1) तन्मूर्त मानव शरीर

1.1) अंगों

1.2) भौतिक विज्ञान

तान्त्रिक

1- प्रथम - सुखम विज्ञानशाला - डेट ऑफ वैदिक विज्ञान

द्वितीय - डॉ. श्री. श्री. श्री.







## खण्ड - 3

### मानवीय शारीरिक संरचना चेतना के संदर्भ में =====

मानवीय शारीरिक संरचना को जब चेतना विज्ञान के सन्दर्भ में देखेंगे तो उसमें मुख्यतः शरीर के विभिन्न अंग चेतना के संदर्भ में, अंगों की चेतना विषयक स्थायें व गुण पर विचार करेंगे, तत्पश्चात्, वास्तु पुरुष के विभिन्न अंग, वास्तु पुरुष, वास्तु पुरुष के विभिन्न अंगों पर स्थापित देवताओं का परिचय तथा उन देवताओं का शारीरिक चेतना के गुणों से अन्तर्सम्बन्ध, इन सभी बिन्दुओं पर अलग-अलग विचार करके उसे स्पष्ट करना परम आवश्यक होगा जो इस प्रकारसे हैं। चेतना विज्ञान - वैदिक वांगमय को प. पू. महर्षि महेश योगी जी के निर्देशन में डॉ. टोनी नेडर द्वारा निम्नलिखित 40 क्षेत्रों में विभक्त किया गया है। जो खण्ड - 3 § 1 § में वर्णित है।<sup>1</sup>

खण्ड - 3 § 1 §

### शरीर के विभिन्न अंग चेतना के संदर्भ में =====

शरीर के विभिन्न अंगों को जब चेतना के सन्दर्भ में देखेंगे तो सबसे पहले यह जानेगे कि सम्पूर्ण मानव शरीर समस्त वैदिक वांगमय द्वारा ही निर्मित है, या फिर इस प्रकार से कहेंगे कि मानव शरीर का प्रत्येक अंग चैतन्य वैदिक स्पन्दनों द्वारा स्पन्दित है, जिसे निम्नलिखित सारणी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

शरीर के अंग	चेतना के सन्दर्भ में
§ 1 § सम्पूर्ण मानव शरीर	§ 1 § ऋग्वेद
§ 2 § सैन्सरी सिस्टम	सामवेद

1 - ग्रन्थ - ह्यूमन फिजियोलॉजी - वेद खण्ड वैदिक लिटरेचर,  
लेखक - डॉ. टोनी नेडर







§ 3§	प्रोसेसिंग सिस्टम	यजुर्वेद
§ 4§	मोटर सिस्टम	अथर्ववेद
§ 5§	आटोनोमिक गैंग्लिया	शिक्षा
§ 6§	लिम्बिक सिस्टम	कल्प
§ 7§	हाइपो थैलमस	व्याकरण
§ 8§	पिट्यूरिटी ग्रैण्ड	निरुक्त
§ 9§	न्यूरोट्रांसमीटर्स न्यूरोहारमन्स	छन्द
§ 10§	बसल गांग्लिया सेरेब्रल कार्टेक्स कोनियल नर्वस, ब्रेन स्टेम।	ज्योतिष
§ 11§	थैलमस	न्याय
§ 12§	सेरेब्रल	वैशेषिक
§ 13§	टाइप्स ऑफ न्यूरोनल एक्टिविटी	सांख्य
§ 14§	एसोसिएशन फाइबर्स आफ सेरेब्रल कोर्टेक्स	योग
§ 15§	डिवीजन्स ऑफ सैन्ट्रल नर्वस सिस्टम	कर्ममीमांसा
§ 16§	इन्टीग्रेटेड फंक्शनिंग आफ सैन्ट्रल नर्वस सिस्टम	वेदान्त
§ 17§	असैन्डिंग ट्रैक्ट्स आफ सैन्ट्रल नर्वस सिस्टम	उपनिषद्
§ 18§	फिक्सी कुली प्रोपी	आरण्यक
§ 19§	डिसेन्डिंग ट्रैक्ट्स आफ सैन्ट्रल नर्वस सिस्टम	ब्राह्मण
§ 20§	वोलन्टरी मोटर एण्ड	इतिहास

सैन्सरी प्रोजेक्सन्स







§21§	ग्रेट इन्टरमीडिएट नेट	पुराण
§22§	मेमोरी सिस्टम्स एण्ड रिफ्लैक्सीज	स्मृति
§23§	साइकल्स एण्ड रिट्म्स पैसमेकर सैल्स	गन्धर्ववेद
§24§	इम्यून सिस्टम बायोकेमिस्ट्री	धनुर्वेद
§25§	एनाटॉमी	स्थापत्य वेद
§26§	मैसोडरमल टिसूज एण्ड ऑर्गन्स	चरक संहिता
§27§	एक्टोडरमल टिसूज एण्ड आर्गन्स	सूश्रुत संहिता
§28§	इन्डोडरमल टिसूज एण्ड ऑर्गन्स	वाग्भट्ट संहिता
§29§	ग्लायस सैल्स	भेल संहिता
§30§	ब्लड एण्ड सक्क्युलेटरी सिस्टम	हारीत संहिता
§31§	लिगामेन्ट्स एण्ड टेण्डन्स	काश्यप संहिता
§32§	सैल मैम्ब्रेन	माधव निदान संहिता
§33§	साइटोप्लाज्म एण्ड साइटो स्केलेन	शार्ङ्गधर संहिता
§34§	सैल्स न्यूक्लीयस	भाव प्रकाश संहिता
§35§	प्लैक्सोफॉर्म लेयर हॉरीजेन्टल कॉम्युनिकेशन सैरेब्रल कोर्टेक्स लेयर ।	ऋक् वेद प्राति शाख्य







§ 36§	कॉर्टीकोकोर्टीकल फाइबर्स	शुक्ल यजुर्वेद प्रातिशाख्य
§ 37§	कोर्टोर्को स्टैट टैक्टल स्पाइनल फाइबर्स	अथर्व वेद प्रातिशाख्य
§ 38§	कॉर्टीकोथालिमिक कोर्टीकोक्लाउस्ट्रल फाइबर्स	अथर्ववेद प्रातिशाख्य § चतुर्थध्यायी §
§ 39§	कॉमीस्त्रल एण्ड कॉर्टीकोकोर्टीकल फाइबर्स	कृष्ण यजुर्वेद प्रातिशाख्य § तैत्तरीय §
§ 40§	थालमॉकोर्टीकल फाइबर्स	सामवेद प्रातिशाख्य § पुष्प सूत्रम §

इस प्रकार से शरीर के विभिन्न अंगों को चेतना के स्पन्दनों के रूप में समझा जा सकता है ।



पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

॥२॥

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

॥२॥

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

॥२॥

॥ विष्णुस्तोत्रम् ॥

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

॥२॥

॥ विष्णुस्तोत्रम् ॥

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

पञ्चाङ्गीत उद्देश्यम्

॥२॥

॥ विष्णुस्तोत्रम् ॥

॥ विष्णुस्तोत्रम् ॥

॥ विष्णुस्तोत्रम् ॥



## अंगों की चेतना विषयक संज्ञायें

=====

शरीर के अंगों की चेतना विषयक संज्ञायें व गुण उपर्युक्त शीर्षक पर यह स्पष्ट करना चाहिए कि शरीर के समस्त अंग जो पूर्व की सारणी में अंकित किये गये हैं, उनकी चेतना विषयक संज्ञायें व चेतना के गुण क्या हो सकते हैं। उस पर निम्न सारणी द्वारा विचार किया जा सकता है :-

शरीर के अंग =====	चेतना विषयक संज्ञायें व गुण =====
1. सम्पूर्ण मानव शरीर	संहिता
2. सैन्सरी सिस्टम	जागृति का प्रवाह
3. प्रोसेसिंग सिस्टम	बौद्धिक क्रिया शक्ति
4. मोटर सिस्टम	प्रति क्षान्ति पूर्णता
5. आटोनोमिक गैंग्लिया	अभिव्यक्ति
6. लिम्बिक सिस्टम	परिवर्तन
7. हाइपो थैलमस	विस्तार
8. पिट्यूरिटी ग्लैण्ड	स्व सन्धि
9. न्यूरोट्रांस मीटर्स न्यूरोहॉरमान्स	मापन एवं परिमाणन
10. बॉसल गांग्लिया सेरेब्रल कॉर्टेक्स केनियल नर्व्स ब्रेन स्टेम	ज्योतिषमयी प्रज्ञा § सर्वज्ञ §
11. थालामस	विभेद एवं निर्णयात्मक
12. सेरेबलम	विशेषता







- |     |  |                      |
|-----|--|----------------------|
| 13. | टाइप्स ऑफ न्यूरोनल एक्टिविटी                       | क्रमबद्धता           |
| 14. | एसोसिएशन फाइबर्स आफ द<br>सेरेब्रल कॉर्टेक्स        | सम्बद्धता            |
| 15. | हिप्पीजन्स ऑफ सेन्ट्रल नर्वस<br>सिस्टम             | विश्लेषणात्मक        |
| 16. | इन्टीग्रेटेड फंक्शनिंग आफ<br>सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम | एकात्मकता            |
| 17. | असैन्डिंग ट्रैक्ट्स ऑफ<br>सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम    | भावातीत स्व सदैव     |
| 18. | फिक्सीक्यूली प्रोपी                                | गतिमान               |
| 19. | डिसैन्डिंग ट्रैक्ट्स ऑफ<br>सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम   | संरचनात्मक           |
| 20. | वोलेंटरी मोटर एण्ड<br>सेन्सरी प्रोजेक्शन्स         | पूर्णता का प्रस्फुटन |
| 21. | ग्रेट इन्टरमीडिएट नेट                              | प्राचीन एवं शास्वत   |
| 22. | मैमोरी सिस्टम्स एण्ड<br>रिफ्लैक्सीज                | स्मृति               |
| 23. | साइकल्स एण्ड रिथम्स<br>पैसमैकरैल्स                 | एकीकरण एवं समन्वयता  |
| 24. | इम्यून सिस्टम बायो केमिस्ट्री                      | अजेय एवं उन्नति कारक |
| 25. | एनाटॉमी  | सुस्थापना            |







26.	मैसोडरमल टिशूज एण्ड ऑरगन्स	अहं ब्रह्मास्मि
27.	एक्टोडरमल टिशूज एण्ड ऑरगन्स	संठन संवर्धन एवं सहयोग
28.	इन्डोडरमल टिशूज एण्ड ऑरगन्स	संचार क्षमता एवं वाग्मिता साम्यता
29.	ग्लियस सेल्स	पृथक्ता
30.	ब्लड एण्ड सर्क्युलेटरी सिस्टम	पोषणकारी
31.	लिगामेन्ट्स एण्ड टेण्डन्स	साम्यता
32.	सेलमैम्ब्रेन	निरूपण
33.	साइटोप्लाज्म एण्ड साइटोस्केल टोन	संश्लेषणात्मक
34.	सेल्स न्यूक्लीयस	बोधमयिता
35.	प्लैक्सो फार्म लेयर हॉरी जैन्टल	व्यापक पूर्णता
36.	कॉर्टिकोकोर्टिकल फाइबर्स	सम्मिलन, प्रसारण
37.	कोर्टिको स्टेट टैक्टल स्पाइन्स फाइबर्स	प्राकट्य
38.	कार्टिकोक्लउस्ट्रल फाइबर्स	विलयन
39.	कॉमिस्ट्रल एण्ड कार्टिकोकोर्टिकल फाइबर्स	सर्व व्यापकता
40.	थालमॉकोर्टिकल फाइबर्स	खण्ड का लोप, अखण्ड का दर्शन







§ 3§ वास्तु पुरुष के विभिन्न अंग

§ 4§ वास्तु पुरुष के विभिन्न अंगों पर स्थापित देवताओं का परिचय

निम्नलिखित विवरण उपर्युक्त खण्ड 3 व 4 को व्यक्त करता है ।

वास्तु पुरुष की संकल्पना चित्रानुसार अधोमुख लेटे पुरुष की है, जिसके दोनों हाँथ नीचे व दोनों पैर के पंजे नैऋत्य दिशा में स्थित है § स्तंभ चित्रानुसार §

-: वास्तु पुरुष के विभिन्न अंग व उनसे सम्बन्धित देवता परिचय :-

वास्तु पुरुषांग  
=====

देवता  
=====

शिर

अग्नि

नैऋ

दिति व मेघों का अधिपति,

अम्बुदाधिप

कण्ठ्य

जयन्त एवं अदिति

मुख

वायु

दक्षिण भुज

सूर्य

वाम भुज

चन्द्र

वक्ष स्थल

महेन्द्र, चरक, आप, आपवत्स

दक्षिण स्तन

अर्यमा

वाम स्तन

पृथ्वीधर

दक्षिण बाहु

सत्य भूष नम, वायु व पूषा,

वाम बाहु

यक्ष्मा, रोग, नाग, मुख्य,

एवं भल्लाट



॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥



करफोणिस्थ ॥ दोनो हथेलियों ॥

सवित्र अर्थात् गणेश,

सविता, रुद्र तथा शक्तिधर

हृदय

ब्रम्हा

बगल ॥ दक्षिण ॥

वितथ गृह्णात

बगल ॥ वाम ॥

शोष तथा असुर

उदर

मित्र एवं विदस्वान

लिंग के मध्य भाग में

इन्द्र एवं जय

दायी उरु

यम

बायी उरु

ऋण

जंघा ॥ दक्षिण ॥

भृङ्ग गन्धर्व और भृगु

जंघा ॥ वाम ॥

दौवारिक, सुग्रीव, पृषपदंत

चरण

पितृ

उपर्युक्त समस्त देवता प्रकृति के विशिष्ट गुण क्षेत्र के चेतना के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं, जिसका वर्णन समरांगण सूत्रधार भवन निवेश के अध्याय 17 के पृष्ठ 78, 79, 90 में मिलता है। इन सकेतों का विश्लेषण करने से इनकी वैज्ञानिकता स्पष्ट होती है, जिसका उपयोग स्थापत्यवेद वास्तु शास्त्र की व्यावहारिक उपयोगिता के संदर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

शा री रिक चेतना के गुणों में अंतर्सम्बन्ध

गुण

ब्रम्हा

अब्ज संभव, सहस्रानन

वह्नि

अचिंत्य किंव

पर्जन्य

सर्वभूतहर

वृष्टिमान, अंबुदाधिप







जयन्त	काश्यप भगवान
महेन्द्र	सुराधीश, दनुजों के विमर्दक
विवस्वान	अहस्कर
सत्य	भूतहित धर्म
भृश	काम, मन्मथ
अन्तरिक्षा ॥ नमः ॥	नमस्
मारुत ॥ अनिल ॥	वायु
पूषा	मातृगण
चितथ	अधर्म, कलिका अप्रतिम सुत
गृह्णात	चन्द्रतनय, बुध
यम	प्रेताधिप, विवस्वान के पुत्र
गन्धर्व	नारद
भृंगराज	निवृत्ति के पुत्र
भृंग	अनन्त, स्वयं भू धर्म
पितृगण	पितृलोक निवासी देवगण
दौवारिक	नन्दी प्रभयों के अधीश्वर
सुग्रीव	आदिप्रजापति मनु
पुष्पदन्त	महाजव वैनतेय
वरुण	जलनाथ, लोकपाल
असुर	राहु, अर्केन्दुमर्दन, सिंघिका तृत
शोष	सूर्य पुत्र, शनैश्चर







पापयक्ष मा	क्षय
रोग	ज्वर
नाग	वासुकि
मुख्य	त्वष्ट्रा विश्वकर्मा
भल्लाट	चन्द्र
सोम	कुबेर
चरक	दयवसाय
अदिति	श्री
दिति	यहाँ इसका तात्पर्य त्रिशूल धारणकर्ता बृषमध्वज शंकर से हैं, जो हिमालय से आये हैं ।
रुद्र	बृषमध्वज
आप	हिमवान
आपवत्स	उमा
अर्यमा	आदित्य
सावित्र	वेदमाता
सवितृ	देवी गंगा
विवस्वान	मृत्यु शरीर हर्ता
जय	वज्री
इन्द्र	बलवान हरि
मित्र	हलधर माली







राजयक्षमा	गृह
क्षितिधन	अनन्त
चरकी विदारी	स्वायोनिमवा, देवानुचरिया
पूतना, पापराक्षसी	

यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि अंग विशेष चेतना के उस गुण विशेष का प्रतिनिधित्व करता है जो कि गुण विशेष के देवता के रूप में प्रकल्पित किया गया है । परन्तु यही चेतन तत्त्व के गुण धर्म प्रकृति सामर्थ्य को यदि शब्द ब्रम्ह अथवा ध्वनि के स्पंदन विशेष के माध्यम से व्यक्त किया जाय तो वह निम्नलिखित वर्णों के माध्यम से व्यक्त होता है, अर्थात् वास्तु पुरुष के विभिन्न अंगों को रूप के माध्यम से, गुण के माध्यम से, तथा वर्णों के माध्यम से भी अभिव्यक्त किया गया है, जिससे कि आवश्यकता-नुसार स्थापत्य वेद शास्त्र के व्यावहारिक पक्ष में उसे दोष शमनार्थ भी प्रयोग किया जा सके जो अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है ।







## खण्ड - 3 § 5§

देवताओं § पुरुषांगों § के शारीरिक चेतना के गुणों § स्पंदन-वर्ण §  
से अंतर्सम्बन्ध

=====

वास्तु व इनका वर्ण निम्न-लिखित है :-

वास्तु पुरुषांग =====	वर्ण =====
मूर्धा	क्ष
दोनों आँखों का मध्य	ह
नासिका	स
चिबुक	ष
कण्ठ	श
हृदय	व
नाभि	ल
वस्ति	र
मेढ्रें § लिङ्ग §	य
दोनों मुष्क	म
उरु § जंघा §	न
जानु § घुटने §	ण
पिण्डिका	अ
दोनों गुल्फान्त	ड.
§ दोनों रङ्गियों में §	
चरण	प







उपर्युक्त तथ्य पर ध्यान देने पर एक महत्वपूर्ण मर्म स्पष्ट होता है, कि शरीर के विभिन्न अंगों की संरचना या रूप प्रयोजन इन सांकेतिक वर्णों के माध्यम से स्पष्ट होता है, जो प्रयोगिक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण है एवं स्थापत्य वेद वास्तु शास्त्र में उस स्थान के देवता विशेष का किसी निर्माण द्वारा पीड़ित होने पर उसके शोधन के उपचारार्थ प्रयुक्त किया जा सकता है ।







## वास्तु पुरुष की क्रियात्मकता :-

:: खण्ड - 4 ::

=====

- वास्तु पुरुष की क्रियात्मकता
- विभिन्न अंगों, मर्मों, वंशों, नाड़ियों आदि की उपयोगिता
- मानवीय शारीरिक रचना के गुणों का उपयोग
- स्थापत्य वेद के मूल सिद्धांतों पर आधारित निर्माण कार्य में वास्तु पुरुषांगों व चेतना विज्ञान के गुणों के अंतर्सम्बन्धों का उपयोगात्मक विवेचन -



॥ ५ - अक्षर ॥

अक्षर

अक्षरानुसारं हि प्रत्येक पदार्थ -

जो कि अक्षरानुसारं, जैसे, जैसे, जैसे अक्षरानुसारं  
अक्षरानुसारं हि

अक्षरानुसारं कि प्रत्येक पदार्थ अक्षरानुसारं -

अक्षरानुसारं कि प्रत्येक पदार्थ अक्षरानुसारं  
अक्षरानुसारं कि प्रत्येक पदार्थ अक्षरानुसारं  
- अक्षरानुसारं कि प्रत्येक पदार्थ अक्षरानुसारं



## खण्ड - 4

वास्तु पुरुष की क्रियात्मकता :-  
=====

वास्तु पुरुष की क्रियात्मकता को समझने के लिए उसके 32 प्रकार, उनमें देवताओं की दिशा व स्थिति, उनके स्वरूप, बलिकर्म, गर्भ-विन्यास, व उसमें प्रयुक्त जड़ी-बूटियों धान्य आदि, धातु, औषधि, रत्न, चिन्ह, विभिन्न आकृतियाँ, स्वर आदि तथा अन्य सम्बन्धित सामग्रियों का विस्तृत ज्ञान आवश्यक है । जिसे वास्तु सम्बन्धित पूजनों व वास्तु दोषों के निवारणार्थ व शोधन आदि महत्वपूर्ण कार्यों के लिए प्रयोग किया जा सकता है । इसी प्रकार वास्तु पुरुष तथा इसमें वर्णित देवताओं तथा उनकी दिशाओं आदि के आधार पर भवन आदि के द्वार निर्णय आंतरिक नियोजन आदि अनेक निर्णय किए जा सकते हैं ।

वास्तु पद विन्यास के 32 प्रकारों का वर्णन निम्नलिखित है :-

श्लोक :-

अधुना पदविन्यासलक्षणं वक्ष्यते क्रमात् ।

प्रथमं चैकपदं स्यात्सकलं नाममेव ॥स्व॥ च ॥१॥

द्वितीयं चतुष्पदं चैव नाम पेशाच ॥पेचक॥ मेव च ।

तृतीयं नवपदं चैव नाम पीठमिति स्मृतम् ॥२॥

चतुर्थं षोडशपदं महापीठमिति स्मृतम् ।

पंचमं पंचपंचाशमुपपीठमिति स्मृतम् ॥३॥

षष्ठमं ॥षठं॥ च॥ षष्ठषष्ठार्शं चोग्रपीठं च कथ्यते ।

सप्तमं सप्तसप्तार्शं स्थण्डिलं परिकीर्तितम् ॥४॥

ग्रन्थ - मानस्यार अध्याय -7, पृ. सं. 19, श्लोक - 1-4







अर्थ :- अब पद विन्यास के लक्षणों को क्रम से कहता हूँ । प्रथम एक पदीय "सकल" कहलाता है । द्वितीय चार पदीय "पिशाच" या "पिचक" कहलाता है । तृतीय नवपदीय "पीठ" कहलाता है । एवं चतुर्थ सोलह पदीय "महापीठ" विन्यास कहलाता है । पांचवा पच्चीस पदीय उप पीठ कहलाता है । छठा 36 पदीय अग्र पीठ कहलाता है । एवं सातवाँ उन्चास 49 पदीय स्थविल कहलाता है ।

इसी प्रकार से अन्य पद विन्यासों का भी वर्णन है जो इस प्रकार से है ।

श्लोक :- अष्टमं तु चतुःषष्टिपदं चण्डितमीरितम् ।  
 कथितं उक्तं मेकाशीतिशीतिपदं नवमं परमशाधि यिक्म् ५॥  
 दशमं शतपदं स्थान्नाममा म चा सनमीरितम् ।  
 स्कादशं तथा प्रोक्तं चैकविंशच्छतं पदम् ६॥  
 स्थानीयं नाममे म्चै व तु चाथ द्वादशकं तथा ।  
 वेदाधिक्यं स चत्वारिंशदेव देशयं शतधिकं पदम् ७॥  
 त्रयोदशं तथा प्रोक्तं नवषष्टिपदिकं शतम् ।  
 पदमेवं विधिं ज्ञात्वा नाम चोभयचण्डितम् ८॥

अर्थ :- आठवाँ यौसठ 64 पदीय छन्दिता कहलाता है, नवमां इक्कासी पदीय परमशाधिका है । दसवाँ सौ पदीय आसन नामक विन्यास है । ग्यारहवाँ एक सौ इक्कीस पदीय 121 पदीय स्थानीय नाम का पद

---

ग्रन्थ - मानसार अध्याय 7, श्लोक नं. 5-8



...  
...  
...  
...  
...  
...  
...

...  
...  
...

1. ...  
2. ...  
3. ...  
4. ...  
5. ...  
6. ...  
7. ...  
8. ...  
9. ...  
10. ...

...  
...  
...  
...



विन्यास है । बारहवाँ § 169§ एक सौ उनहत्तर पदीय पदविन्यास उभयछिदिता नामक है । इस प्रकार चौदह प्रकार के पदविन्यासों का वर्णन है, इनके अन्य भेदों का भी हम आगे वर्णन करेंगे ।

अन्य पद विन्यास इस प्रकार है :-

श्लोक :- चतुर्दशं तथा प्रोक्तं षण्णवत्यधिकं शतम् ।  
 नाम तद्भूमेव तु अष्ट्याथ पञ्चदशं तथा § 9§  
 पञ्चविंशपदाधिक्यं शतद्वयपदान्वितम् ।  
 नामं § 10§ महासनं प्रोक्तमथ षोडशकं तथा । § 10§  
 सप्ताष्टाधिकं त्रिंशत् पद्यगर्भं पदं भवेत् ।  
 तथा वै सप्तदशकं नवाशीतिशतद्वयम् § 11§  
 त्रियुतं पदमेवोक्तं तथाष्टादशमं § 12§ तथा ।  
 चतुर्विंशत्सत्रिंशत् चैव कर्णष्टकं भवेत् § 12§

अर्थ :- चौदहवा "भद्र" नामक विन्यास कहलाता है, जो 196 पदीय अर्थात् एक सौ छियानवे पद का है । पन्द्रहवाँ § 225§ दो सौ पच्चीस पदीय महासन कहलाता है । सोलहवाँ दो सौ छप्पन पदीय "पद्म गर्भ" कहलाता है । सत्रहवाँ दो सौ नवासी § 289§ पदीय त्रियुत है । अठारहवाँ तीन सौ चौबीस पदीय कर्णष्टक होता है ।

---

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - 7, पृ. सं. 33-34, श्लोक 9 से 12 तक







इसी प्रकार अन्य भी भेद हैं :-

श्लोक :- स्कोनविंशति तथा चैव ॥सैक॥ षष्टिशतत्रयम् ।  
 गणितं पदमित्येवं तथा विंशतिकं ततः ॥ 13 ॥  
 चतुः शतपदं चैव प्रोक्तं कुर्याद्वि ॥सूर्यवि॥ शालकम् ।  
 तथा चैक विंशतिकं चैक पञ्चाष्टमाधिकम् । ॥ 14 ॥  
 चतुःशतपदं युक्तं सुसंहिमितीरितम् ।  
 तथाऽपि द्वाविंशतिकं वेदाशीतिचतुःशतम् । ॥ 15 ॥  
 पदं सुप्रतिकान्तं स्याच्च योविंशाद्विधानके ।  
 नवविंशत्पञ्चशतं पदमेतद्विशालकम् । ॥ 16 ॥  
 चतुर्विंशाद्विधाने तु षडधिक्यं ॥क्य॥ सप्तसति ।  
 पञ्चशतपदयुतं विप्रगर्भमिति स्मृतम् । ॥ 17 ॥  
 पञ्चवाविंशाद्विधाने तु पञ्चोर्बिर्शत्सप्तशतम् ।  
 पदं विवेश ॥विश्वेश॥ स्नात्वा ॥य॥ नाममे ॥त्वं॥ वं प्रकीर्तितम् ॥ 18 ॥  
 षड्विंशतिविधाने तु षट्सप्ततिकसंयुतम् ।  
 षट्शतं पद ॥दं॥ स्नात्वा ॥य॥ विपुलं ॥ल॥ भोगमिति ॥गं तु॥ स्मृतम् ॥ 19 ॥  
 सप्तविंशाद्विधाने तु नवविंशतिसप्तशः ।  
 शतयुतं पदं चैव विप्रकान्तमिति स्मृतम् । ॥ 20 ॥

अर्थ :- पद विन्यास से सम्बन्धित इन पदों का अर्थ इस प्रकार से है ।  
 चौबिसवां पद विन्यास पांच सौ छियत्तर पदीय ॥विप्रगर्भ॥  
 नाम का है ।

ग्रन्थ मानसार अध्याय - 7, श्लोक 13 से 10 तक ।



-: ५ अं नि उर उर उर नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

-: अं नि

॥ ११ ॥ अं नि उर उर नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

॥ ११ ॥ १ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

॥ ११ ॥ १ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

॥ ११ ॥ १ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

॥ ११ ॥ १ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

॥ ११ ॥ १ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

॥ ११ ॥ १ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

॥ ११ ॥ १ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

-: अं नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि

१ प्रमत्तः [अ] अं नि उर उर नि



पच्चीसवां छः सौ पच्चीस पदीय §विश्वेश§ नामक पद विन्यास है ।

छब्बीसवां 6 सौ छियत्तर पदीय "विपुल" भोग नामक है ।

सत्ताइसवां सात सौ उन्तीस पदीय "विप्रकान्त" है ।

आगे के अन्य पद विन्यास इस प्रकार से हैं :-

श्लोक :- तथाऽपि चाष्टाविंशत्ये वेदाशीतिं च मांशीत्या तथाधिकम् ।

सप्तसंख्याशतयुतं विशालाक्षमिति स्मृतम् ॥ 21 ॥

नवविंशद्विधाने तु चत्वारिंशैकमांशं चाधिकम् ।

अष्टशतपदं दं युक्तं विप्रभक्तीति क्रित्तुं कीर्तितम् । 22 ।

तत्र त्रिंशद्विधाने तु पदं नवशतं तथा ।

एवं विश्वेशसारं च चैकत्रिंशद्विधानतः ॥ 23 ॥

अर्थ :- अठ्ठाइसवां पद विन्यास सात सौ चौरासी पदीय "विशालाक्ष" नामक है ।

उन्तीसवां पद विन्यास आठ सौ इकतालीस पदीय §विप्रभक्ति नामक है । तीसवां " विश्वेश सार" नामक नौ सौ पदीय है ।

अन्य दो पद विन्यास इस प्रकार हैं :-

श्लोक :- एकषष्टि समाधिक्यं पदं नवशतयुतम् ।

स्वमीश्वरकान्तं स्याद्वात्रिंशद्विधानके ॥ 24 ॥

चतुर्विंशतिसंयुक्तं सहस्रपदसम्मितम् ।

एवं तु चन्द्रकान्तं स्यादेवमुक्तं पुरातनैः ॥ 25 ॥

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - 7, श्लोक 21 से 23 तक

वही " " श्लोक 24 से 25 तक ।



१. ई आरम्भ की उप शक्ति प्रकृतिक शक्ति कि : प्रकृतिक शक्ति

२. ई आरम्भ की शक्ति "प्रकृति" शक्ति आरम्भ की शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

३. ई आरम्भ की शक्ति "प्रकृति" शक्ति आरम्भ की शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

—: ई ई आरम्भ की शक्ति आरम्भ की शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

प्रकृति शक्ति आरम्भ की शक्ति : प्रकृतिक शक्ति —: प्रकृतिक शक्ति

॥ १५ ॥ प्रकृतिक शक्ति आरम्भ की शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

१. प्रकृति शक्ति : प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

॥ १५ ॥ प्रकृति शक्ति : प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

१. प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

॥ १५ ॥ प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

"प्रकृतिक शक्ति" शक्ति : प्रकृतिक शक्ति कि शक्ति आरम्भ की शक्ति : प्रकृतिक शक्ति —: प्रकृतिक शक्ति

१. ई आरम्भ

प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति कि शक्ति आरम्भ की शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

१. ई आरम्भ कि शक्ति : प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

—: ई आरम्भ की शक्ति आरम्भ की शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

१. प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति —: प्रकृतिक शक्ति

॥ १५ ॥ १. प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

१. प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

॥ १५ ॥ प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

॥ १५ ॥ १. प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति

॥ १५ ॥ १. प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति : प्रकृतिक शक्ति



अर्थ :-

इन श्लोकों का अर्थ इस प्रकार से है ।

इक्कतीसवां पद विन्यास नौ सौ इकसठपदीय "ईश्वर कान्त" नामक है ।

बत्तीसवाँ पद विन्यास एक हजार चौबिस पदीय "चन्द्रकान्त" है ।

इस प्रकार से यह स्पष्ट हुआ कि मानसार नामक ग्रन्थ में यह 32 प्रकार के पद विन्यास हैं, जो अलग-अलग संख्याओं, पदों एवं अलग-अलग संज्ञाओं से अलग-अलग प्रयोजन हेतु है ।

हम इन्हीं पद विन्यासों का सचित्र वर्णन करेंगे :-

॥१॥

सकल पद विन्यास -

यह एक पदीय होता है । यह भगवान के स्थान पर या पूजा स्थल, यज्ञ, भवन, बैठक, भोजन-कक्ष, तथा श्राद्धआदि में उपयोग में लाया जाता है ।

चतुःसूक्तंतु ॥त्रेण॥ संयुक्तं सकलमेकपदं भवेत् ॥स्यात्॥

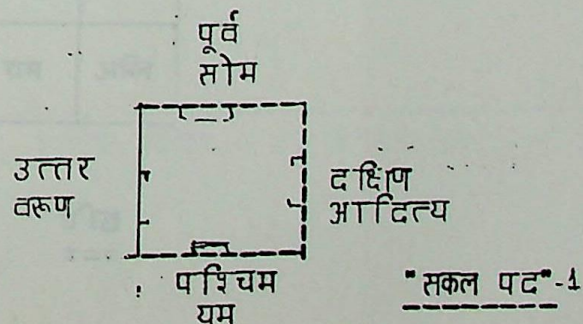
तत्पूर्वसूत्रमादित्यं द्वांसूत्रं यमाख्यकम् । ॥ 26 ॥

प्रत्यक्सूत्रं जलेशं स्यात्तैत्तम्यसूत्रं क्षपाहरम् ।

देवतागुरुपूजार्थं चग्निकार्यार्थमेव वा । ॥27॥

यतीनामासना ॥र्थार्थ॥ यापि भोजनार्थं सनातनम् ।

पैतृकार्थं तु संपूज्य ॥ज्यं॥ एवं तु सकलं स्मृतम् ॥ 28 ॥





॥ ३ ॥

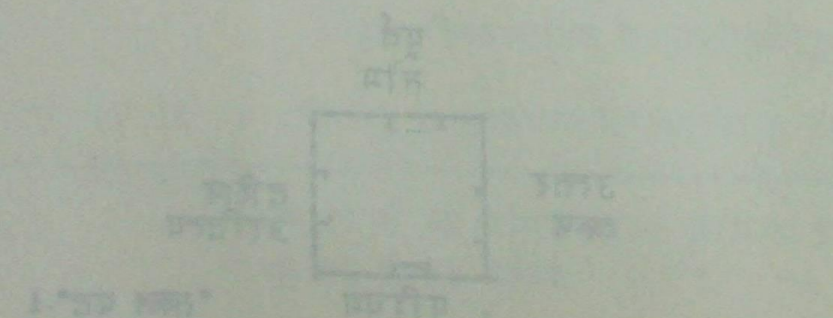
॥ ३ ॥

॥ ३ ॥

॥ ३ ॥

॥ ३ ॥

॥ ३ ॥





१२१

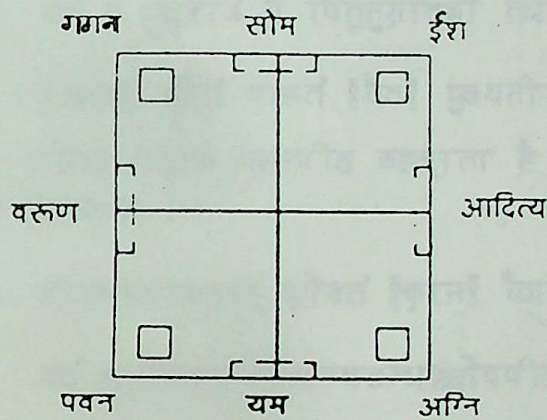
पीठक :- यह घरेलू या सार्वजनिक पूजा घर एवं सार्वजनिक  
स्नानागार हेतु बनाया जाता है । यह पिशाच भी कहलाता  
है ।

श्लोक :-

पैशाचाः पेषकमश्नुत सूत्रेण संयुक्तं तु चतुष्पदम् ।

पैशाचेशः पेषके ईशः पदे स्थाप्यः पर्वः बह्वेषच ततः पेषकाः ५ विमलेः देः  
वतम् ॥ २९ ॥

पिशाच  
४ पद



पीठक  
===

पीठ पद विन्यास :- पवनं वायु कोणे तु गगनं चैव भेद्वृते ।

एवं तद्गुह्यं ह्युजार्थं स्तपनं स्याज्जनार्थकम् ॥ ३० ॥

पीठ  
नौ पद

पवन	सोम	ईश
वरुण	पृथ्वी	आदित्य
गगन	यम	अग्नि

पीठ  
===



1. ...  
 ...  
 ...

	...	...	...
...	...	...	...
...	...	...	...
...	...	...	...

...

...

1. ...  
 ...

...	...	...
...	...	...
...	...	...

...

...



महापीठ का विन्यास :-

महापीठ पदे मध्ये ब्राम्हणस्य ऽब्राम्हणच ऽ चतुष्पदम् ।

तद्वहिःसूत्र देशेशादापवशचा ऽत्सा ऽ र्यक ऽकौ ऽ तथा ॥ 31 ॥

सेवित्रं च विवस्वा ऽ स्वन्तं च इ ऽचे ऽन्द्रं चैव तु मित्रकम् ।

रुद्रं चैव ऽच ऽ भूधरं चैव स ऽत्वे ऽवं प्रदक्षिणं क्रमात् ॥ 32 ॥

तद्वहिः परितः सूत्रं चैशं चैव जला ऽय ऽन्तकम् ।

आदित्यं विमृशं चैव कृशानुं विततं ऽथं ऽ तथा ॥ 33 ॥

यमं च भृङ्गराजं च पितृसुग्रीवकौ तथा ।

ऽवरुणं ऽ शोषं मारुतं ऽचैव ऽ मुख्यसोमादित ऽतीं ऽस्तथा ॥ 34 ॥

अर्थात् = सोलह पदीय महापीठ कहलाता है ।

उप पीठ पद विन्यास :-

पञ्चपञ्चामरान् प्रोक्तं ऽक्रान् ऽ चैशां तु पूर्ववत्क्रमात् ।

एवं सूत्रस्थितान्देवान्पदस्थाश्चोपपीठके ॥ 35 ॥

अर्थात् - पञ्चसीसपदीय उपपीठ कहलाता है ।

श्लोक - षष्ठमं ऽष्ठं च ऽ षष्ठषष्ठानां चोपपीठं च चयेते ।

अर्थात् - छत्तीस पदीय उपपीठ कहलाता है ।

श्लोक - सप्तमं सप्ततप्तांशं स्थण्डिलं परिकीर्तितम् ॥

स्थण्डिल - उन्यास पदीय स्थण्डिल कहलाता है ।

---

ग्रन्थ मानसार अध्याय - 7, श्लोक संख्या - 31 से 35 तक







## 4. महापीठ पद विन्यास :

मरुत	मुख्य	सोम	अदिति
शोष	रुद्र	भूधर	ईश
वरुण	ब्रह्म		जयन्त
मित्रक			अपवत्स
इन्द्र			आर्यक
सुग्रीव			आदित्य
पितृ	विवस्वत्	सावित्र	भृश
भृंगराज	यम	वितथ	कृषाणु

मरुत	मुख्य	सोम	अदिति
शोष	रुद्र	भूधर	ईश
वरुण	ब्रह्म		अपवत्स
मित्रक			जयन्त
इन्द्र			आर्यक
सुग्रीव			आदित्य
पितृ	विवस्वत्	सावित्र	भृश
भृंगराज	यम	वितथ	कृषाणु

N



## महापीठ पद विन्यास :

अदिति	-	1/2 पद	ईश	-	1/2 पद
जयन्त	-	1/2 पद	आपवत्स	-	1/2 पद
आर्यक	-	1/2 पद	आदित्य	-	1/2 पद
भृश	-	1/2 पद	कृषाणु (अग्नि)	-	1/2 पद
सावित्र	-	1/2 पद	वितथ	-	1/2 पद
विवस्वत्	-	1/2 पद	यम	-	1/2 पद
भृंगराज	-	1/2 पद	पितृ	-	1/2 पद
सुग्रीव	-	1/2 पद	इन्द्र	-	1/2 पद
मित्रक	-	1/2 पद	वरुण	-	1/2 पद
शोष	-	1/2 पद	मरुत	-	1/2 पद
मुख्य	-	1/2 पद	रुद्र	-	1/2 पद
सोम	-	1/2 पद	भूधर	-	1/2 पद
ब्रह्म	-	1/2 पद	मध्य मे ब्रह्म स्थान होता है ।		







## 5. उपपीठ पद विन्यास :

इसको 5 x 5 अर्थात् 25 बराबर भागों में बाँटते हैं ।

	उत्तर					
	मरुत	मुख्य	सोम	अदिति	ईश	
	शोष	रुद्र	भूधर	आपवत्स	जयन्त	
पश्चिम	वरुण	मित्र	ब्रह्म	आर्यक	आदित्य	पूर्व
	सुग्रीव	इन्द्र	विवस्वत्	सवित्र	भृश	
	पितृ	भृंगराज	यम	वितथ	अग्नि	
	दक्षिण					

इस पद विन्यास में ब्रह्म केन्द्र में एक पद में होता है । जो कि आठ पदों से घिरा होता है । आपवत्स, आर्यक, सवित्र, विवस्वत्, इन्द्र, मित्र, रुद्र तथा भूधर । उनके बाहर जो देवता स्थापित हैं वे हैं ईश, जयन्त, आदित्य, भृश, अग्नि, वितथ, यम, भृंगराज, पितृ, सुग्रीव वरुण, शोष, मरुत, मुख्य, सोम तथा अदिति ।

प्रत्येक देवता के लिये एक पद है ।







## 6. उग्रपीठ पद विन्यास :

इसको 6 x 6 अर्थात् 36 बराबर भागों में बाँटते हैं ।

वायु	मुख्य	सोम	अदिति	ईश
शोष	रुद्र	भूधर	अपवत्स	जयन्त
वरुण	मित्र	ब्रह्म	आर्यक	आदित्य
सुग्रीव	इन्द्र	विवस्वत	सवित्र	भृश
पितृ	भृंगराज	यम	वितथ	अग्नि

ईश	-	1 पद उत्तर-पूर्व में	जयन्त	-	1 पद उत्तर-पूर्व में
आदित्य	-	2 पद पूर्व में	भृश	-	1 पद दक्षिण-पूर्व में
अग्नि	-	1 पद दक्षिण-पूर्व में	वितथ	-	1 पद दक्षिण-पूर्व में
यम	-	2 पद दक्षिण में	भृंगराज	-	1 पद दक्षिण-पश्चिम में
पितृ	-	1 पद दक्षिण-पश्चिम में	सुग्रीव	-	1 पद दक्षिण-पश्चिम में
वरुण	-	2 पद पश्चिम में	शोष	-	1 पद उत्तर-पश्चिम में
वायु	-	1 पद उत्तर-पश्चिम में	मुख्य	-	1 पद उत्तर-पश्चिम में
सोम	-	2 पद उत्तर में	अदिति	-	1 पद उत्तर-पूर्व में
आपवत्स	-	1 पद उत्तर-पूर्व में	आर्यक	-	2 पद पूर्व में
सवित्र	-	1 पद दक्षिण-पूर्व में	विवस्वत	-	2 पद दक्षिण में
इन्द्र	-	1 पद दक्षिण-पश्चिम में	मित्र	-	2 पद पश्चिम में
रुद्र	-	1 पद उत्तर-पश्चिम में	भूधर	-	2 पद उत्तर में
ब्रह्म	-	4 पद (मध्य में) स्थित होता है।			







## 7. स्थण्डिल पद विन्यास :

इसको 7 x 7 अर्थात् 49 पदों में बँटते हैं ।

उत्तर									
वायु	मुख्य	सोम	अदिति	ईश					
शोष	रुद्र	भूधर	अपवत्स	जयन्त					
वरुण	मित्र	ब्रह्म	आर्यक	आदित्य					
सुग्रीव	इन्द्र	विवस्वत	सवित्र	भृश					
पितृ	भृंगराज	यम	वितथ	अग्नि					
पश्चिम					पूर्व				

## दक्षिण

ईश	-	1 पद	जयन्त	-	1 पद
आदित्य	-	3 पद	भृश	-	1 पद
अग्नि	-	1 पद	वितथ	-	1 पद
यम	-	3 पद	भृंगराज	-	1 पद
पितृ	-	1 पद	सुग्रीव	-	1 पद
वरुण	-	3 पद	शोष	-	1 पद
वायु	-	1 पद	मुख्य	-	1 पद
सोम	-	3 पद	अदिति	-	1 पद
आपवत्स	-	1 पद	आर्यक	-	3 पद
सवित्र	-	1 पद	विवस्वत	-	3 पद
इन्द्र	-	1 पद	मित्र	-	3 पद
रुद्र	-	1 पद	भूधर	-	3 पद
ब्रह्म	-	9 पद (मध्य में)			







छन्दिता पद विन्यास 64 पदीय होता है, इसे मण्डूकाकार भी कहते हैं ।

ये सभी तरह के भवनों में उपयोग में लाया जाता है । छन्दिता विन्यास चूँकि सम विन्यास है, अतः इसे निश्कल विन्यास कहते हैं ।

श्लोक :- एतत्पदस्थितं §स्थानां§ सर्वदेवानां रूपमुच्यते ।

त्रिंशत् §तु§ सूत्रसंयुक्तं चाष्टाविंशत् सन्धिभिः ॥ 38 ॥

चतुर्कैश्च षडाधिक्यं त्रिंशत्संयुक्तमेव च ।

षट्कद्वादशसंयुक्तं कर्णे शूलं चतुष्टयम् ॥ 39 ॥

मध्ये चाष्टकसंयुक्तं सूत्रं §त्रं§ मण्डूकनामकम् ।

चतुर्विंश् चतुःसूत्रं षोडशान्यं §शमं§ त्र सूत्रकम् ॥ 40 ॥

उपर्युक्त श्लोक में जिस छन्दिता पद विन्यास का वर्णन है, उसके पद निम्नलिखित तरीके से विभाजित किये जा सकते हैं ।

---

1- ग्रन्थ ॥ मानसार अध्याय - 7, श्लोक संख्या - 38 से 40 तक ।







इन पदों व देवताओं की व्याख्या इस प्रकार है :-

श्लोक :- दक्षिणाद्युत्तरान्तं स्यात्पूर्वादिपश्चिममान्तकम् ।

एते ऽसत् ऽ विंशतिसूत्रं स्थात्कणोसूत्रं चतुष्टकम् ॥ 41 ॥

स्तद्वह्निस्ततश्चैशाच्चतुष्टकं प्रदक्षिणे ।

अपवत्स । पवत्स्यश्च ऽयो. ऽप्रत्यग ऽत्येकाऽर्धार्धभोग्यता ॥ 42 ॥

सवित्रं चैवं सवित्रं देवार्धार्धपदे स्थितम् ।

इन्द्रं चैवेन्द्रराजं च प्रत्येकार्धपदे पराः ऽरेऽ ॥ 43 ॥

रुद्रो रुद्रजयं चै ऽग्रैऽव चार्धार्धपदभोगिनः ऽनौऽ ।

एवं चाष्टामराः प्रोक्तास्तद्वह्निश्च समास्मेत ॥ 44 ॥

अर्थात् - छन्दितापद विन्यास में देवता जैसे ब्रम्हा मध्यचार पद में और आर्यक विवस्वत मित्र और भूधर प्रत्येक तीन प्रदीप पूर्व से है । फिर चारों कोणों में उ.पू. कोने से प्रदक्षिण विधि से आप वत्स अपवत्स प्रत्येक का आधा पद है । और सविज सावित्र का आधा - 2 पद द.पू. में है । द.प. में इन्द्र व इन्द्रजय का भी आधा-आधा पद है और रुद्र रुद्रजय उ.प्र. में आये-आये पद में है । इस तरह से आठ देवताओं का स्थान कोने के पदों में तीसरे चक्र में बताया गया है ।

छन्दिता पद विन्यास में पदों में देवताओं की स्थिति इस प्रकार से है :-

श्लोक:- ईशानश्चैव पर्जन्यः अऽन्यश्चाऽग्निः पूषाग्निकोणके ।

मृषश्च ऽपिताऽ दौवारिकश्चैव कोणे नैर्ऋत्यदेशके ॥ 45 ॥

1. ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 7 श्लोक संख्या 41 से 44 तक

2. ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 7 श्लोक संख्या 45 ।



... -: कविः

॥ १० ॥ ...

...

॥ २५ ॥ ...

...

॥ २५ ॥ ...

...

॥ २५ ॥ ...

... - कविः

...

...

...

...

...

...

...

... -: कविः

...

॥ २५ ॥ ...

...

...



श्लोक - रोगं वायुनाशं नागां द्वयो वायुकोणे चार्धपदेश्वरे रः  
बहिस्तुष्टकं षकस्त् तत्पश्चो चतुकोणे समारभेत् ॥ 46 ॥

अर्थात् - चौथे चक्र में कोने के पदों में ईशान और पर्जन्य उ.पू. में  
अग्नि व पूषान द.पू. में पितृ व दौवारिक द.प. कोने में  
और वायु व नाग उ.प. कोने में आधे-आधे पद में करना चाहिए।

श्लोक - जयन्तस्तत्परे सौम्ये अन्तर्लिखे क्षा रक्षकपूर्वके ।  
वित्थश्चैकपदे पूर्वे दक्षिणे रक्षकपदे मृगः ॥ 47 ॥  
सुग्रीवो दक्षिणे चैव गोथे धैः कपटं देवश्चिमे ।  
प्रत्यक् चैव पदे मुख्यमु ख्य उदितश्चोतरेऽपि च ॥ 48 ॥  
पूर्वाह्निकं मध्यस्थसूत्रस्य सौम्यदिक्द्विपदे ।  
तथोत्तरे महेन्द्रस्य द्विपदं दक्षिणे तथा ॥ 49 ॥  
सत्यस्य द्विपदं तस्य दक्षिणे द्र्यं भृशम्स्य  
दक्षिणे मध्यसूत्रस्य पूर्वे च द्विपदे यमः । ॥ 50 ॥

अर्थात् - इसके बाद प्रत्येक कोने के बाद चारों ओर दो भुजाओं में  
देवताओं की स्थापना शुरू करनी चाहिए ।

जयन्त उत्तर में उ.पू. कोने में अन्तर्लिखा एक पद में पूर्व की  
तरफ, वित्थ भी एक पद में पूर्व की तरफ द.पू. कोने में तथा मृग एक पद  
दक्षिण की तरफ, सुग्रीव एक पद दक्षिण पश्चिम कोने में, गोधा असुर एक  
पद पश्चिम की तरफ, मुख्य को एक पद पश्चिम में उ.प. कोने में और उदित  
को एक पद में उत्तर की तरफ स्थापित करना चाहिए । चित्रानुसार

1. ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 7, श्लोक संख्या 46 से 50



- ॐ नमः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

- ॐ नमः

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

- ॐ नमः

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

- ॐ नमः

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

॥ २१ ॥



पूर्व की तरफ दिनकरऽआदित्य को एक दो पद देते हैं  
तृतीय व चतुर्थ चक्र में आदित्य के बगल में उत्तर की तरफ दो पद महेन्द्र  
का है फिर दिनकर के दक्षिण की तरफ बगल में दो पद सत्य को देते हैं उसके  
बगल में सत्य के दक्षिण में दो पद में भूष को स्थापित करते हैं ।

श्लोक :- तत्पूर्वे द्विपदे स्थित्वा ऽस्थाप्यो राक्षसं चैव पश्चिमं ।  
गन्धर्वं ऽर्वं द्विपदे स्थाप्यं मृश ऽषस्य ऽतद् द्विपदं भवेत् ॥ 51 ॥  
पश्चिमे मध्यसूत्रस्य दक्षिणे वरुण ऽणः स्थितः ।  
द्विपदं ऽदे ऽपुष्पदन्तस्य द्विपदं चोत्तरे तथा ॥ 52 ॥  
द्विपदे द्विपदे चैव चेश्वरः शोषरोगयोः ।  
तत्तद्विपदं ज्ञात्वा चतुर्विंश क्रमादुधः ॥ 53 ॥

अर्थात् - दक्षिण की तरफ उत्तर से दक्षिण की तरफ जाती हुई मध्य की  
रेखा के पहले का दो पद यम का होता है । यम से पहले दो  
पद राक्षस का होता है इसी प्रकार से यम से पश्चिम की  
ओर दो दो पद पहले गन्धर्व के एवं उसके बाद मृश के होते हैं ।

पश्चिम की तरफ-

पश्चिम से पूर्व की तरफ जाती हुई मध्य रेखा के पहले का दो  
पद वरुण है उसमें पहले वरुण से दक्षिण की तरफ दो पद पुष्पदन्त के होते  
हैं । वरुण के बाद उत्तर की तरफ दो-दो पाद पहले शोष और फिर रोग  
के होते हैं ।

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - 7, श्लोक संख्या 51 से 53 तक



...  
...  
...  
...

... - : ...

...

...

...

...

...

... - ...

...

...

...

...

...

...

...

...

...



इसी प्रकार से उत्तर की तरफ - उत्तर से दक्षिण की तरफ जाती हुई मध्य रेखा के पहले पश्चिम की तरफ सोम का दो पद है, उसके पहले पश्चिम की ओर दो पद भल्लाट के एवं सोम से पूर्व की तरफ भृंग राज के एवं उससे आगे पूर्व की तरफ दो पद अदिति के होते हैं ।

श्लोक :- चरकीशानबहिः स्थाप्या विदारि पावकै विधिः ।

बहिर्नैर्ऋत्यस्य ॥ ५४ ॥ ब्राम्हे पूतना च बहिस्तथा ॥ ५४ ॥

वायुकोणाप्रदेशे तु ब्रह्मणे वा ॥च॥ पापराक्षसी ।

एवं तु चण्डितं प्रोक्तं परमशायिकमुच्यते ॥ 55 ॥

अर्थात् - बाह्य में उ. पू. कोण के बाहर चरकी का स्थान होता है ।

द. पू. कोण के बाहर बिटारी का स्थान होता है । द. पू. के बाहर पूतना का स्थान होता है एवं उ. प. कोण के बाहर पाप राक्षसी का स्थान निर्धारित होता है । इन के लिये कोई पद नहीं निर्धारित है ।

इस प्रकार से देवताओं के वर्णन से छन्दिता पद विन्यास होता है ।

**परमशायिका :-**

यह सकल पदविन्यास भी कहलाता है तथा सभी प्रकार के भदनों में प्रयोग में लाया जाता है, एवं इसमें चार रेखायें ४ प्रत्येक की ४ चार भुजाएँ होनी चाहिए जो कि 16 रेखाओं का निर्माण करती हैं । साथ ही 20 अन्य

गुन्थ - मानसार - अध्याय - 7, श्लोक संख्या - 54, 55 तक



...  
...  
...  
...

... - : ...

... ॥ ... ॥

... ॥ ... ॥

... ॥ ... ॥

... - ...

... ॥ ... ॥

... ॥ ... ॥

... ॥ ... ॥

... ॥ ... ॥

... - : ...

... ॥ ... ॥

... ॥ ... ॥

... ॥ ... ॥

... - ... - ... - ...



9. ऐकाशीति पद विन्यास :  
(परमशायिका)

इसमें 9 x 9 अर्थात् 81 पद होते हैं ।

उत्तर								
मरुत	नाग	मुख्य	भल्लाट	सोम	मृग	अदिति	उदित	ईश
रोग	रुद्र	रुद्रजय	भूधर			अपवत्स	आपवत्स	पर्जन्य
शोष								जयन्त
असुर	मित्र		ब्रह्म			आर्यक		महेन्द्र
वरुण								भानू
पुष्पदन्त								सत्य
सुग्रीव	इन्द्रजय	इन्द्र	विवस्वत			सावित्र	सवित्र	भृश
दीवारिक								अन्तरिक्ष
पितृ	मृष	भृंगराज	गन्धर्व	यम	गृहसत	वितथ	पूषान	अग्नि
दक्षिण								

पश्चिम

पूर्व

अभी जब आगे planning नियोजन करेंगे तब आपको यह पता चलेगा कि हम जब श्लोक में कहते हैं कि इनकी स्थापना भूधर में करें । इनकी स्थापना आर्यक में करे । तो यदि हम इस वास्तु पुरुष को नहीं जानेंगे, तब हमको यह समझ में नहीं आयेगा । अगर कुछ है कि इसको भानु में यह करने से ऐसा होता है ऐसा द्वार करने से क्रोध की अधिकता होती है, तो यदि हम इस वास्तु पुरुष को नहीं जानेंगे, केवल श्लोक के इस मर्म को जानेंगे कि किस स्थान







रेखाएं बननी चाहिए जो दक्षिण से उत्तर के अंत तक तथा पूर्व से पश्चिम के अंत तक होनी चाहिए और चार रेखाएं चारों कोनों पर होनी चाहिए । परम शायिका पद विन्यास का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट है :-

श्लोक :- एकाशीतिपदं कृत्वा मध्ये नवपदं विधिम् ।

पूर्व रसपदं चैव तदेवमार्यमनः ॥ मर्यम्णः ॥ स्मृतम् ॥ 56 ॥

दक्षिणे रसपदं चैव विवस्वान् ॥ स्वतः ॥ एव कथ्यते ।

पश्चिमे षट्पदं चैव मित्रस्य मि॥स्ये॥ति ॥ हि॥ संस्मृतम् ॥ 57 ॥

तौम्ये रसपदं चैव भूधरस्य चतुष्टयम् ।

चतुर्विंशन्तराले च ई॥त्वी॥ विशादीनि ॥ दि च ॥ चतुष्टयम् ॥ 58 ॥

अर्थात् - इसमें अब परमशायिका पद विन्यास का वर्णन है । जिसमें 81 पद बनाये जाते हैं और मध्य में 9 ॥नौ॥ पद ब्रम्हा का होता है । इसमें पूर्व की ओर ब्रम्हा के बाद 6 पद आर्यमा ॥आर्यमा आर्यक का होता है । दक्षिण की तरफ छः पद विवस्वान या विवस्वत का होता है तथा पश्चिम की तरफ ॥6॥ छः पद मित्र के होते हैं इसी प्रकार उत्तर में भी पद भूधर के निर्धारित हैं ।

इसके बाद चारों कोनों के चारों पद में जो की द्वितीय चक्र में आयेगा । चार मध्य क्षेत्र के बीच के देवता का वर्णन है । यह उ.पू. से प्रारम्भ होता है :-

---

1. ग्रन्थ - मानसार अध्याय - 7, श्लोक संख्या 56 से 58 तक ।



...  
...  
...  
...

...

...  
...  
...  
...  
...  
...

...  
...  
...  
...  
...  
...  
...

...  
...  
...

...



श्लोक :- तत्तत्पदेषु सर्वे कर्णे चाश्रयमीरितम् ।

भूधरस्य ततः पूर्वे द्विपदा ऽदेः चापवत्स्था ॥ 59 ॥

आर्य ऽकःस्य पदे सौम्ये अऽम्येऽपवत्स्था ऽस्यस्यऽद्वयोस्तथा ।

पूर्वे रसपदाधाये द्विपदे च सवित्र कः ॥ 60 ॥

विवस्वतो ऽतोऽद्विपूर्वादिदश ऽद्वयं साविन्द्र ऽत्र मेव च ।

द्वौ रसपदात्प्रत्यक् द्विपदे च तथै ऽथेऽन्द्रकः ॥ 61 ॥

मित्रकस्य पदे धाम्ये द्विपदे इन्द्रजयस्तथा ।

पश्चिमे रसपदात्सौम्ये द्विपदे रुद्रदेवता ॥ 62 ॥

सौम्ये रसपदात्प्रत्यक् द्वौ रुद्रजयस्तथा ।

एवमन्तर्गते देवास्तद्वाहो देशे राक्षसान् ॥ 63 ॥

अर्थात् :- अप व अपवत्स के दो पद भूधर के पूर्व में होते हैं । तथा आर्यक के उत्तर में दो पद आप वत्स के लिये दो पद निर्धारित होता है । सवित्र के लिए दो पद पूर्व की ओर अंतिम में ऽहः पदों के बाद होते हैं और विवस्वत के पूर्व की ओर दो पद सावित्र के होते हैं । दक्षिण की ओर विवस्वत के पश्चिम में ऽद्वितीय चक्र में दो पद इन्द्र के होते हैं तथा मित्र के दक्षिण में दो पद इन्द्रजय के होते हैं ।

दूसरे चक्र में ही मित्र के छः पदों के उत्तर में दो पद रुद्र के तथा उसी तरह छः पदीय भूधर के पश्चिम में दो पद रुद्रजय का होता है । ये सभी आन्तरिक क्षेत्रों के देवता का स्थान निर्धारित है । इसके बाद बाह्य देवताओं का वर्णन उनके पद स्थान से करेंगे ।







श्लोक :- सौम्ये रसपदात्प्रत्यक् द्वावै रूद्रजयस्तथा ।

एवमन्तर्गते देवांस्तद्वाह्ये देशे राक्षसान् ॥ 63 ॥

इन्द्रे चैव पदे भानुश्यामाश्चैव पदा ॥ 5 ॥ ग्निके ।

यमे चैव पदे चक्रि ॥ १ ॥ नैर्ऋत्ये ॥ २ ॥ कपदेपितृ ॥ ता ॥ ॥ 64 ॥

जलेशे ॥ ३ ॥ ४ ॥ कपदे प्रत्यक् पवनैकपदे मरुत् ।

सौम्ये चैकपदे ॥ चै ॥ च ॥ चन्द्रश्चैवैकपदे ॥ दं ॥ दै ॥ दे ॥ शके ॥ 65 ॥

अर्थात् :- बाहर के देवताओं में पूर्व में मध्य में भानु आदित्य ॥ का स्थान होता है । दक्षिण पूर्व के पद में अग्नि को रखना चाहिए फिर दक्षिण के मध्य में जोपद है उसमें यम का स्थान होता है साथ ही साथ द. प. में पितृ का एक पद होता है । जल के देवता वरुण का एक पद पश्चिम के मध्य का पद होता है, तथा उत्तर पश्चिम के कोने में एक पद मरुत ॥ वायु ॥ को होता है । उत्तर दिशा के मध्य में एक पद चन्द्र ॥ सोम ॥ का होता है तथा ईश उसके स्वर्ग के पद में अर्थात् उत्तरपूर्व में होता है ।

इस प्रकार परमशयिका पद विन्यास के बाह्य देवताओं में मध्य व कोने के देवताओं का वर्णन है । आगे अन्य बाह्य देवताओं का पद वर्णन इस प्रकार से है ।

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - 7, श्लोक संख्या 63 से 65 तक ।







श्लोक :- पर्जन्ये ऽन्यस्यैऽ कपदं चैव चेशकस्य तु दक्षिणे ।  
 जयन्तस्य पदं चैकं पर्जन्यस्य तु दक्षिणे ॥ 66 ॥  
 महेन्द्रस्य पदं चैकं जयन्तस्य तु दक्षिणे ।  
 सत्यकस्य पदं चैकमादित्यस्य तु दक्षिणे ॥ 67 ॥  
 भृशस्यैकपदं प्रोक्तं सत्यकस्य तु दक्षिणे ।  
 अन्तरिक्षस्यैकपदं बहिकोणस्थ चोत्तरे ॥ 68 ॥  
 पूषस्य ऽष्णाश्वऽ पदमेकं स्याश्चमिङ्कोणस्य पश्चिमे ।  
 विधात ऽत्थऽस्य पदं चैकं पूषकस्य तु पश्चिमे ॥ 69 ॥

अर्थात् :- ईश के दक्षिण में एक पद पर्जन्य का होता है । पर्जन्य के दक्षिण में एक पद जयन्त के लिए होता है । जयन्त के दक्षिण में एक पद महेन्द्र के लिए होता है । आदित्य के दक्षिण में एक पद सत्य हेतु सुरक्षित होता है ।  
 सत्य के दक्षिण में एक पद भृश के लिए होता है । द.पू. कोण के उत्तर में एक पद अन्तरिक्ष का होता है । द.पू. कोण में अग्नि व पश्चिम में एक पद पूषान के लिए है । पूषान से पश्चिम में एक पद विधात का होता है । दक्षिण के अन्य देवताओं का पद इस प्रकार से है ।

---

1. ग्रन्थ - मानसार - अध्याय - 7, श्लोक संख्या 66 से 69 तक ।



॥ ३३ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ३४ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ३५ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ३६ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ३७ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ३८ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ३९ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ४० ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।

:- ५४ :-

॥ ४१ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ४२ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ४३ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ४४ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ४५ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।

॥ ४६ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ४७ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ४८ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ४९ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ५० ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ५१ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ५२ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।  
॥ ५३ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।

॥ ५४ ॥ श्रीगुरुदेव्यो नमः ।



श्लोक :- गृह्णतस्यैकपदं विधात ऽतथैव पश्चिमे ।

गन्धर्वस्य पदं चैकं धर्मदेवस्य पश्चिमे ॥ 70 ॥

भृगुराजस्यैकपदं गन्धर्वस्य तु पश्चिमे ।

बृष ऽमृशैवैकपदं शरतं भृगुः राजस्य पश्चिमे ॥ 71 ॥

अर्थात् - वितथ के पश्चिम में एक पद गृहधक्षत का होता है । धर्मराज ऽयमृ के पश्चिम में एक पद गन्धर्व का होता है । इसी तरह से गन्धर्व में एक पद भृगराज का होता है । भृगराज के पश्चिम में एक पद भृश का होता है ।

इसी प्रकार से पश्चिम के देवताओं का भी पद निर्धारित निम्नलिखित प्रकार से है ।

श्लोक - दौवारिकस्यैकपदं गगनस्य तु चोत्तरे ।

सुग्रीवस्य पदं चैकं दौवारिकस्य चोत्तरे ॥ 72 ॥

पुष्पदन्तस्यैकपदं सुग्रीवस्य तु चोत्तरे ।

असुरस्यैकपदं शरतं वरुणस्य तु चोत्तरे ॥ 73 ॥

शोषकस्य पदं चैकं चासुरस्य तु चोत्तरे ।

रोगस्यैकपदं प्रोक्तं शोषकस्यैव चोत्तरे ॥ 74 ॥

अर्थात् - गगन के उत्तर में एक पद दौवारिक के लिए होता है ।  
दौवारिक के उत्तर में एक पद सुग्रीव के लिए होता है ।  
सुग्रीव के उत्तर में एक पद पुष्पदन्त के लिए होता है ।  
वरुण के उत्तर में एक पद असुर के लिए होता है । असुर के







उत्तर में एक पद शौष हेतु कहा गया है । शौष के उत्तर में एक पद रोग के लिए निर्धारित है ।

इस प्रकार से पश्चिम दिशा में देवताओं का पद निर्णय किया जाता है ।

इसके पश्चात् उत्तर दिशा के देवताओं का पद वर्णन है जो निम्न प्रकार है :-

श्लोक :- नागस्यैकपदं शस्तं पवनस्य तु पूर्वके ।

मुख्यस्यैकपदं ज्ञात्वा नागस्यैव च पूर्वके ॥ 75 ॥

भल्लाटस्य पदं चैकं प्रोक्तं मुख्यस्य पूर्वके ।

मृगस्यैकपदं शस्तं सोमदेवस्य पूर्वकम् ॥ 76 ॥

आदितेस्तु पदं चैकं शस्तं मृगात्तु ऽगस्य ऽ पूर्वके ।

आदितीशानयोर्मध्ये चेदिते ऽतैः कपदं भवेत् ॥ 77 ॥

अर्थात् :- पवन के पूर्व की ओर एक पद नाग का होता है । नाग से पूर्व की ओर एक पद मुख्य का होता है । मुख्य के पूर्व में एक पद भल्लाट की होता है । सोम के पूर्व में एक पद मृग का बताया गया है । मृग के पूर्व में एक पद अदिति का होता है, तथा अदिति और ईशान के मध्य में एक पद उदित होना चाहिए ।

इस प्रकार से 81 पद वास्तु पुरुष या परमाश्रयिका पद विन्यास के 45 देवताओं का पद विन्यास किया जाता है ।

---

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - सात, श्लोक क्र. 75 से 77 तक ।







ॐ क ॐ

ॐ ।। ॐ

वास्तु पद देवताओं का तात्पर्य

उपर्युक्त लिखित वास्तु पद देवताओं की जो स्थायें हैं के कुछ विशेष तात्पर्य लिये हुए हैं । जैसे वास्तु पुरुष के मध्य में ब्रह्म जो कम्ल ब्रह्मा स्थित है । वे हजार मुख वाले ब्रह्मा अचिन्त्य विभव जिसका तात्पर्य है कि प्रकृति की जो अनन्त सम्भावनाएँ हैं, वे ब्रह्म स्थान में जागृत रहती हैं, इसी कारण से वास्तु निर्माण में केन्द्र के ब्रह्म स्थान को प्रायः रिक्त रखने का विधान है तथा यदि वहाँ भित्ति या स्तम्भ आदि का निर्माण करते हैं तो उसके परिणाम शुभकर नहीं होते क्योंकि वहीं से प्रकृति की उर्जाएँ वहाँ से समस्त गृह को प्राप्त होती है । समरांगण सूत्रधान भवन निवेश में भी उ. पू. कोण का उल्लेख किया गया है व सर्वभूत हर भगवान शंकर है, जिसको मानसार में ईशान पद की स्था दी गई है ।

पर्जन्य :- पर्जन्य नाम वाले देव से तात्पर्य वह वृष्टिमान अंबुदाधिप है ।

जयन्त - का तात्पर्य भगवान कश्यप ऋषि से है । महेन्द्र देव इन्द्र को दशाति हैं । जो कि राक्षसों के विनाशक कहे गये हैं ।

आदित्य - का प्रयोजन सूर्य से है । सत्य पद प्राणियों के हितैषी धर्म को दर्शाता है । मृग के प्रयोजन कामदेव से है ।

अन्तरिक्षा - पद देवता नभोदेव हैं ।







"मारुत" - वायु को दर्शाते हैं तथा पूषा का अभिप्राय मातृगण से है । "वितथ" नामक देव कलियुग के अप्रतिम सुत अधर्म को दर्शाते हैं । "गृह्यत" का तात्पर्य चन्द्रमा के पुत्र कहलाने वाले बुध से है । प्रेतों के स्वामी श्रीमान् "यम्" वैवस्वत हैं । भगवान् "गन्धर्व" देव नारद परिकीर्तिक हैं । निष्कृति सुत राक्षस से यहाँ प्रयोजन "भृगुराज" से है । "भृगु" का अर्थ स्वयम् ब्रम्हा और धर्म है पितृ लोक के निवासी देव "पितृगणों" के रूप में वर्णित है । प्रथमों के अधीश्वर नंदी से तात्पर्य है "दौवारिक" का आदि प्रजापति सृष्टिकर्ता मनु सुग्रीव से व्यपटिष्ट है । विनता के सुत महाजनशाली वायु का पुष्पदन्त से अभिप्राय है । समुद्रों §जलो§ के स्वामी और लोकपाल से तात्पर्य है "वरुण" का । "असुर" से तात्पर्य सूर्य, चन्द्र के ग्रासक सिंहिका राक्षसी के पुत्र राहु से है । §शोष§ से तात्पर्य है सूर्य पुत्र भगवान् शनिश्चर का । "पाण्डुरमा" क्षय का बोधक है । "रोग" ज्वर को दर्शाता है । "नागों" से तात्पर्य सर्पों के स्वामी वासुकी शेषनाग से है । "मुख्य" से तात्पर्य "विश्वकर्मा" और त्वक्छटा से है । "मल्लाह" से चन्द्र और "सोम" से यहाँ तात्पर्य कुबेर से है । व्यवसाय नाम धारि "चरक" है । यहाँ "अदिति" से तात्पर्य लक्ष्मी से है । यहाँ दिति "त्रिशूलधारी" बृषमध्वज शंकर निरूपित किये गये हैं । "आप" हिमालय और "आपवत्स" से उमा से प्रयोजन है ।

"अर्यमा" से आदित्य को और सावित्र से "वेदमाता" को सम्मान चाहिए यहाँ "सविता" से गंगा देवी का प्रयोजन है । शरीरहर्ता मृत्यु का बोध कराता है "यम्" । "जय" नामक देव बृज धारण कर्ता बलवान् हरि इन्द्र कहे गये हैं । "मित्र" से तात्पर्य माली हलधर और "रुद्र" महेश्वर से तात्पर्य है ।







"राज्यमा" का स्वामी कार्तिकेय और क्षितिधन "पृथ्वीधर" भगवान अनन्त  
शेषनाग से तात्पर्य है ।

चरकी, विदारी, पूतना, व पापराक्षसी - का राक्षस में उत्पन्न  
होने वाली देवताओं की अनुचरीं से प्रयोजन है ।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रत्येक पद देवता प्रकृति की  
किसी न किसी शक्ति विशेष को दर्शाते हैं, जिसका कि गुण हमको उसके अर्थ  
या उस मान को दर्शाने वाली संज्ञा से होता है । यही गुण, धर्म, प्रकृति हमको  
उस स्थान विशेष को किस प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाय तो उस स्थान  
विशेष की उर्जा अर्थात् देवता सहयोगकारी होगा इसके ज्ञान का सकेत हो  
देता है ।







खण्ड - 4

क - III

विभिन्न अंगों, मर्मों, वंशों, नाड़ियों आदि की उपयोगिता  
=====

वंशों, नाड़ियों आदि की उपयोगिता :-

वास्तु पुरुष की प्रकल्पना मानव शरीर के समान की गई है ।  
तथा उसके अंगों - प्रत्यंगों, नाड़ी, शिराओं आदि का वर्णन किया गया  
है । जिसे अत्यन्त सावधानीपूर्वक अध्ययन कर उपयोग किया जाता है ।  
विभिन्न अंगों का वेध होने पर विभिन्न परिणामों का भी उल्लेख हमारे  
शास्त्रों में मिलता है । वास्तु पुरुष के शरीर की कल्पना में पहले मुख, सिर,  
कान, आँख, तालु, ओष्ठ, दाँत छाती कंठ, दो स्तन, नाभि, लिङ्ग, अंडकोष  
१दो१ गुदा, बाहु, १दो१ प्रवाह १ दो१ हाँथ १दो१ स्फिक, रुद्र १दो१ दो जंघा,  
तथा दो पैर होते हैं । इस शरीर में शिराएँ वंश, तथा अनुवंश, सन्धियाँ तथा  
अनुसन्धियाँ, मर्म तथा महावंश लक्षित किये गये हैं । जो वास्तु शास्त्र की क्रिया-  
त्मकता को लक्षित करते हैं एवं उसकी उपयोगिता को सिद्ध करते हैं । इसको  
जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह जाने कि यह अर्थात् नाड़ी, वंश,  
शिरा आदि क्या होता है । जैसा कि समराङ्ग सूत्रधार के निम्नलिखित श्लोक  
से स्पष्ट होता है :-

श्लोक :- समराङ्ग - सूत्रधार के अनुसार -

श्लोक :- एक एव पुमानेषु बहुधा परिकल्पितः ।

सर्वस्मिन्नपि संस्थाने विभाक्ते लक्षयेत् ततः ॥ 21 ॥

ग्रन्थ - समराङ्ग सूत्रधार भवननिवेश लेख - उॉ. दिवेन्द्र नाथ शुक्ल







शरीरं वास्तुपूर्वोऽस्य गुणदोषा भवन्ति यत् ।

मुखं मूर्ध्नि ततः श्रोते द्रक्ताल्वोष्ठरदाः क्रमात् ॥ 22 ॥

क्षाः कण्ठः स्तनौ नाभिमेन्द्रमुष्कावधौ गुदम् ।

बाहू प्रबाहू पाणी स्निग्धरूजङ्ग पदद्वयम् ॥ 23 ॥

कल्पयेदेवमेतेन स भवेत् पुरुषाकृतिः ।

सिरावशानुवंशाश्च सन्धयः सानुसन्धयः ॥ 24 ॥

मर्मण्यथ महावंशा लक्षया वास्तुशरीरगः ।

सिराः कर्णगता याः स्युस्ता नाड्यः परिकीर्तिताः ॥ 25 ॥

पदस्य षोडशो भागस्तत्प्रमाणं प्रकीर्तितम् ।

महावंशौ प्राक्प्रतीच्यौ याम्योदीच्यौ च मध्यगौ ॥ 26 ॥

प्रमाणं पंचमो भागः पदस्योद्धातं तयोः ।

वंशस्तेऽस्मिन् समुद्दिष्टा रेखा याः स्युर्मुखायताः ॥ 27 ॥

यास्तित्यगायता रेखास्तेऽनुवंशाः प्रकीर्तिताः ।

सम्पाता ये स्युरेतेषां मर्म तत् संप्रचक्षते ॥ 28 ॥

उपमर्मणि तान्याहुः पदमध्यानि यानि हि ।

भागोऽष्टमोऽथ दशमो द्वादशः षोडशोऽपि च ॥ 29 ॥

पदतो मानमिष्टं स्याद् वंशादीनामनुक्रमात् ।

वंशाष्टकस्य यः सन्धिः स सन्धिरिति कीर्तितः ॥ 30 ॥

ये पुनः स्युस्तदङ्गानां प्रोक्तास्ते चानुसन्धयः ।

वालाग्रतुल्यं सन्धीनां प्रमाणं परिचक्षते ॥ 31 ॥

ग्रन्थ - सामराङ्ग सूत्रधार - भवननिवेश लेख - उॉ. दिवेन्द्र नाथ शुक्ल

अध्याय - 15, श्लोक संख्या 22 से 31 तक



॥ ४४ ॥ प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु  
। त्रिषु अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु

॥ ४५ ॥ प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु  
। त्रिषु अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु

॥ ४६ ॥ प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु  
। त्रिषु अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु

॥ ४७ ॥ प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु  
। त्रिषु अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु

॥ ४८ ॥ प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु  
। त्रिषु अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु

॥ ४९ ॥ प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु  
। त्रिषु अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु

॥ ५० ॥ प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु  
। त्रिषु अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु

॥ ५१ ॥ प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु  
। त्रिषु अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु

॥ ५२ ॥ प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु  
। त्रिषु अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु

॥ ५३ ॥ प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु  
। त्रिषु अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु

प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु  
॥ ५४ ॥ प्रथमः अक्षरविचारः किं अक्षरं त्रिषु



तदर्थमनुसन्धीनां प्रमाणं समुद्रीरितम् ।

येनैता नि सन्त्यज्य वास्तुविद्याविशारदः ॥ 32 ॥

द्रव्याणि प्रयतो नित्यं स्थपतिर्विनिवेशयेत् ।

महावंशस्य नाकान्ति कुर्यद् द्रव्येन केनचिद् ॥ 33 ॥

इतरेषु पुनर्द्रव्यं मध्यवंशेषु सन्त्यजेत ।

उपर्युक्त श्लोक के आधार पर हम यह स्पष्ट करेंगे कि नाड़ी वंश आदि क्या है ?

नाड़ी - कान तक जो शिराएँ फैलती हैं, वह नाड़ी कहलाती है । पद का सोलहवाँ भाग उसके प्रकार से लक्षित किया गया है ।

महावंश - पूर्व तथा पश्चिम में उत्तर व दक्षिण में दो-दो महावंशों की उपस्थिति होती है । तथा उसका प्रमाण पद का पंचम भाग कहा गया है ।

वंश, अनुवंश - फैली हुई रेखाएँ § चित्रानुसार § वंश कहलाती है, तथा टेढ़ी आकार वाली रेखाएँ अनुवंश कहलाती हैं ।

मर्म - उपर्युक्त रेखाओं के सम्पातों को मर्म कहा जाता है, जो पद के मध्य में हैं वे उपमर्म होते हैं, उप मर्म कहा जाता है । इनका भाग आठवाँ, दसवाँ, बारहवाँ, सोलहवाँ कहा गया है ।

सन्धि - आठों वंशों की सन्धि को सन्धि कहा जाता है, इनका प्रमाण बालाग्र के समान होता है ।

ग्रन्थ - सम्राट्. ण सूत्रधार अध्याय - 15, श्लोक संख्या 32-33 तक



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



अनुसन्धि -  
-----

वंशों के अंगों की सन्धियों को अनुसन्धि कहा जाता है ।

जिनका प्रभाव बालाग्र के आधे के समान होता है ।

उपर्युक्त को यत्न से त्याग कर द्रव्यों का विनिवेश करना चाहिए ।

भीतर के बाहर के बत्तीस जो देवता हैं, उनके जो स्थान, जो मर्म शिरायें और जो वंश हैं, उनमें से मुख में, हृदय में नाभि में शिरा में और दोनों स्तनों में जो वास्तु पुरुष के मर्म हैं उनको "षण्महन्ति" कहा जाता है ।

पीड़न फल :-

वेध, वंशों, शिराओं आदि के बारे में बताने के साथ- साथ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि पीड़न फल क्या होता है - पीड़न फल को इस श्लोक से स्पष्ट किया जा सकता है ।

श्लोक :-  
====

महावंशसमाक्रान्तौ भवेत् स्वाभिवधो ध्रुवम् ॥ 34 ॥

वर्षेण तपनाद् भीतिं वंशानां पीडनाद् विदुः ।

उपमर्मणि रोगाय मर्मणि कुलहानये ॥ 35 ॥

उद्वेगायार्थनाशाय तिराश्च स्युःप्रपीडिताः ।

कलिः स्यात् सन्धिविद्वेषु पीडितेष्वनुसन्धिषु ॥ 36 ॥

तस्मादेतानि सर्वाणि पीडितान्युपलक्षयेत् ॥ 37 1/2 ॥



- प्रतीक

१. ई ताम्र तम प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

१. ई ताम्र तम कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

ताम्र प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

१. प्रतीक

, ताम्र कि प्रतीक, ई ताम्र कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

ताम्र कि प्रतीक कि प्रतीक, ई ताम्र कि प्रतीक, ई ताम्र कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक  
ताम्र "प्रतीक" कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

१. ई ताम्र

-: ताम्र

ताम्र - ताम्र कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

ताम्र - ई ताम्र तम ताम्र तम कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

१. ई ताम्र तम ताम्र तम कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

-: ताम्र

॥ २४ ॥ ताम्र तम ताम्र तम कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

१. ताम्र तम ताम्र तम कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

॥ २४ ॥ ताम्र तम ताम्र तम कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

१. ताम्र तम ताम्र तम कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

॥ २४ ॥ ताम्र तम ताम्र तम कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक

॥ २४ ॥ ताम्र तम ताम्र तम कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक कि प्रतीक



अर्थात् - इस श्लोक से स्पष्ट है कि किसी भी द्रव्य से महावंश का अतिक्रमण नहीं करना चाहिये । अन्य मध्य वंश में द्रव्यों को छोड़ देना चाहिए । महावंश के वेध से स्वामि का वध होता है । वंशों की पीड़न से वर्षा की भीति और तपन की भीति होती है । उपमर्मों के पीड़न से रोग, मर्मों के पीड़न से कुल हानि, शिराओं के पीड़न से उद्वेग व अनर्थ, सन्धियों व अनु-सन्धियों के पीड़ित होने पर कलि के उपस्थित होने का उल्लेख दृष्टव्य है ।

वेध - वेधों के बारे में भी हमारे शास्त्रों में विस्तार से वर्णन मिलता है, एवं उन वेधों के फलों के बारे में भी इन श्लोकों से स्पष्ट है :-

श्लोक :-

भित्तिविस्तृतमध्येन यद्वा मध्येन दारुणः ।

मर्म यत् पीडयते येन गृहे तत्रोच्यते फलम् ॥ ११ ॥

द्वारैर्वा भित्तिभिर्वापि मर्मणां परिपीडनात् ।

दौर्गत्यं गृहिणः प्राहुः कुलहानिमथापि वा ॥ १२ ॥

भवेत् स्वामिवधः स्तम्भैस्तुलाभिः स्त्रीपरिधायः ।

स्नुषावधो जयन्ती भिर्वन्धुनाश्च सह गृहेः ॥ १३ ॥

मर्मस्थानगतैः कार्यभृतः कायो निपीडयते ।

सहस्रश्लेषमिच्छन्ति सन्धिपालेशच तद्विदः ॥ १४ ॥

---

ग्रन्थ - समराङ्गण सूत्रधार § भवन निवेश § लेखक डॉ. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल  
अध्याय १६ श्लोक संख्या ॥ से १४ तक ।







श्लोक :-

नागपाशैर्धनोच्छेदो नागदन्तैः सुहृत्क्षयः ।

कपिच्छकैश्च मर्मस्थैः प्रेक्षयाणां क्षयमादिशेत् ॥ 15 ॥

षट्द्वारुकाण्यनुशिरागवाक्षालोकनैश्च ।

मर्ममध्योपगान्येतान्यावहन्ति धनक्षयम् ॥ 16 ॥

इन श्लोकों से यह स्पष्ट होता है कि वेष्टों के क्या- क्या फल हैं, जिनका विस्तार से उल्लेख इस प्रकार से है :-

दीवाल से विस्तृत मध्य के द्वारा अथवा लकड़ी के मध्य लकड़ी से जो मर्म जिस घर में पीड़ित होता है, उसका फल इस प्रकार से होता है ।

द्वारों अथवा दीवारों से मर्मों का परिष्पीड़न होने पर घर के स्वामी की दुर्गति अथवा कुल हानि होती है । स्तम्भों द्वारा स्वामी नाश, तुलाओं द्वारा स्त्री नाश, जयन्तियों द्वारा स्नुषा §बाहु§ नाश, और संग्रह द्वारा भाई का नाश बताया गया है । मर्म स्थानगत शरीरों से स्वामी का शरीर निपीड़ित होता है । सन्धि पालों द्वारा मित्र-हानि नाग पाशों द्वारा धन हानि, नागदन्त से मित्र हानि, कपिच्छको §कंगूरो§ से वेध होने पर नौकरों की हानि वर्णित है । षट्द्वारु, अनुशिरास, गवाक्ष, आलोकन आदि मर्म मध्य में स्थित होते हैं तो धन क्षय करवाते हैं । द्वार, द्रव्य, तुला

---

ग्रन्थ - सामराङ्ग.ण सूत्रधार §भवन निवेश§ लेखक - डॉ. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल  
अध्याय 16, श्लोक संख्या 15-16







स्तम्भ, नाग, दन्त, गवाक्षों, के द्वारा यदि द्वारका मध्य पीड़ित होता है, तो रोग, कुल पीड़ा, एवं धन का क्षय होता है ।

इसी प्रकार से अन्य भी वास्तु से सम्बन्धित वेध हैं जो इस प्रकार से हैं :-

श्लोक :-

नृपदण्डभयं पत्युः पीडनं च प्रचक्षते ।

द्वारमध्येषु षड्दारुमध्येष्वपि च सूरयः ॥ 18 ॥

कर्णद्रव्यादिभिर्विद्वेष्वेतदेव फलं विदुः ।

शय्यानुवशविहिता गृहिणां कुलनाशिनी ॥ 19 ॥

क्षयावहा नागदन्ता मर्तुः शय्यावितानगाः ।

वातायनैरथ स्तम्भैर्येविद्धा नागदन्तकाः ॥ 20 ॥

ते शस्त्रभीतिदा भर्तुर्यद्वा चौरभयप्रदाः ।

द्रव्यधान्यविनाशाय शोकाय क्लहाय च ॥ 21 ॥

गृहमध्यगतं द्वारं भवेत् स्त्रीदूषणाय च ।

द्रव्येणान्यतरेणापि महामर्म निपीडितम् ॥ 22 ॥

भवेत् सर्वस्वनाशाय गृहिणो मरणाय च ।

अंशुकाश्चोर्ध्ववशाश्च तुम्बिकाः सेन्द्रकीलकाः ॥ 23 ॥

पुर प्रासादगेहानां वेधेऽप्येते न दोषदाः ॥ 24<sup>1</sup>/<sub>2</sub> ॥

ग्रन्थ - सामराङ्गण सूत्रधार - भवन निवेश - लेखक डॉ. दिजेन्द्र नाथ शुक्ल

अध्याय - 16, श्लोक संख्या 18 से 23<sup>1</sup>/<sub>2</sub> तक ।



अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १ ॥  
॥ २ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ २ ॥  
॥ ३ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ ३ ॥

-: ३ ॥ १ ॥

-: ३ ॥ २ ॥

- ॥ १ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १ ॥  
॥ २ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ २ ॥  
॥ ३ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ ३ ॥  
॥ ४ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ ४ ॥  
॥ ५ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ ५ ॥  
॥ ६ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ ६ ॥  
॥ ७ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ ७ ॥  
॥ ८ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ ८ ॥  
॥ ९ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ ९ ॥  
॥ १० ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १० ॥  
॥ ११ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ ११ ॥  
॥ १२ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १२ ॥  
॥ १३ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १३ ॥  
॥ १४ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १४ ॥  
॥ १५ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १५ ॥  
॥ १६ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १६ ॥  
॥ १७ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १७ ॥  
॥ १८ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १८ ॥  
॥ १९ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १९ ॥  
॥ २० ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ २० ॥

अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ १ ॥  
॥ २ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ २ ॥  
॥ ३ ॥ अथ यज्ञोपवीतं धारयन् ब्रह्मचर्यं कुरु ॥ ३ ॥



अन्य वेधों के बारे में भी इन श्लोकों से स्पष्ट होता है -

किं द्वार के मध्यों और षट्-दारुओं के मध्य पीड़न व कर्ण द्रव्य को पीड़न में भी नृपदंड का भय व स्वामी पीड़न कहते हैं । शय्या यदि अनुवंश से विहित है, तो घर वालों का कुल नाश करने वाली कही गई है । शय्या के वितान में स्थित नागदन्त स्वामी के क्षय का कारण होते हैं । जो नागदन्त गवाक्षों और स्तम्भों से विद्ध हैं वे शस्त्र अथवा चोर का भय उत्पन्न करते हैं । साथ ही द्रव्य विनाश कारक तथा शोक व लड़ाई उत्पन्न करते हैं । गृह के मध्य भाग में द्वार निवेश स्त्री दूषण के लिए होता है । अन्य द्रव्य से भी यदि महा मर्म निपीड़ित होता है तो गृही का सर्वनाश और मरण उपस्थित होता है । पुरो, प्रसादों और घरों में अंशुक, उधर्ववंश तुम्बिका और इन्द्र कील के वेध होने पर ये दोष उपस्थित करने वाले नहीं होते हैं ।

महावंश -

पूर्व तथा पश्चिम में उत्तर व दक्षिण में दो-दो महावंशों की उपस्थिति होती है तथा उसका प्रमाण पद का पंचम भाग कहा जाता है ।

वंश - § अनुवंश§

फैली हुई रेखाएं § चित्रानुसार § वंश कहलाती हैं तथा टेढ़ी आकार वाली रेखाएं अनुवंश कहलाती हैं ।

वास्तु पुरुष मण्डल तथा उसमें नाड़ी, वंश, शिरा आदि की

स्थिति -

वास्तु पुरुष मण्डल निर्माण करते समय पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण खींची जाने वाली रेखाएं शिराएं कहलाती हैं । एकाशीति पद में क्रमशः दस पूर्व







पश्चिम व दक्ष उत्तर दक्षिण व चौसठ पद में नौ पूर्व पश्चिम व नौ उत्तर दक्षिण निर्मित रेखाओं को शिरा कहते हैं ।

इन शिराओं का भी वास्तु शास्त्र § स्थापत्य वेद § में अलग अलग नाम बताया गया है, जो कि निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट होता है:-

श्लोक :-

दश पूर्वतया रेखा दश चैवोत्तरायताः ।

सर्वा वास्तु विभागेषु विज्ञेया नवका नव ॥ 18 ॥

शान्ता, यशोवती कान्ता विशाला प्राणवाहिनी ।

सती च सुमनानन्दा सुभद्रा सुस्थिता तथा ॥ 19 ॥

पूर्वपरागता ह्येता उदग्गा म्याश्रितास्तथा ।

हिरण्या सुव्रता लक्ष्मी विमूर्तिर्विमला प्रिया ॥ 20 ॥

जया काला विशोका च तथेन्द्रा दशमी स्मृता ।

एका शीतिपदे ह्येता शिराश्च परिकीर्तिता ॥ 21 ॥

श्रिया यशोवती कान्ता सुप्रियपि परा शिवा ।

सुशोभा सधना ज्ञेया तथेमा नवमी स्मृता ॥ 22 ॥

पूर्वापरा तथा ध्येताश्चतुष्पष्टि पदे स्थिताः ।

धन्या धरा विशाला च स्थिरा रूपा गदा निशा ॥ 23 ॥

विभवा प्रभवा चन्या सौम्याश्रिताः शिराः ।

---

ग्रन्थ - विश्वकर्म प्रकाश । अध्याय - 5, श्लोक संख्या 18 से 23½ तक ।







अर्थात् -

इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि शान्ता, यशोवती, कान्ता, विशाला, प्राणवाहिनी, सती, सुमना, नंदा, सुभद्रा और सुस्थिता दस १०१ रेखा पूर्व पश्चिम से गई होती हैं। और उत्तर दक्षिण के आश्रित जो रेखाएं होती हैं, वे हिरण्या, सुव्रता, लक्ष्मी, विभूति, विमला प्रिया, जया, काला, विशोका और दशमी इंद्रा कही है। इक्यासी पद के वास्तु में ये शिराये होती हैं।

चौसठ पद के वास्तु में श्रिया, यशोवती, कान्ता, सुप्रिया, पद्मा शिवा, सुशोभा, सहाना और नौवी इभा ये नौ शिरा पूर्व से पश्चिम पर्यन्त होती हैं। इसी प्रकार धन्या, धरा, विशाला, स्थिर रूपा, गदा और निशा विभवा, प्रभवा और नौवी सौम्या ये उत्तर से दक्षिण की नौ शिराएं होती हैं।

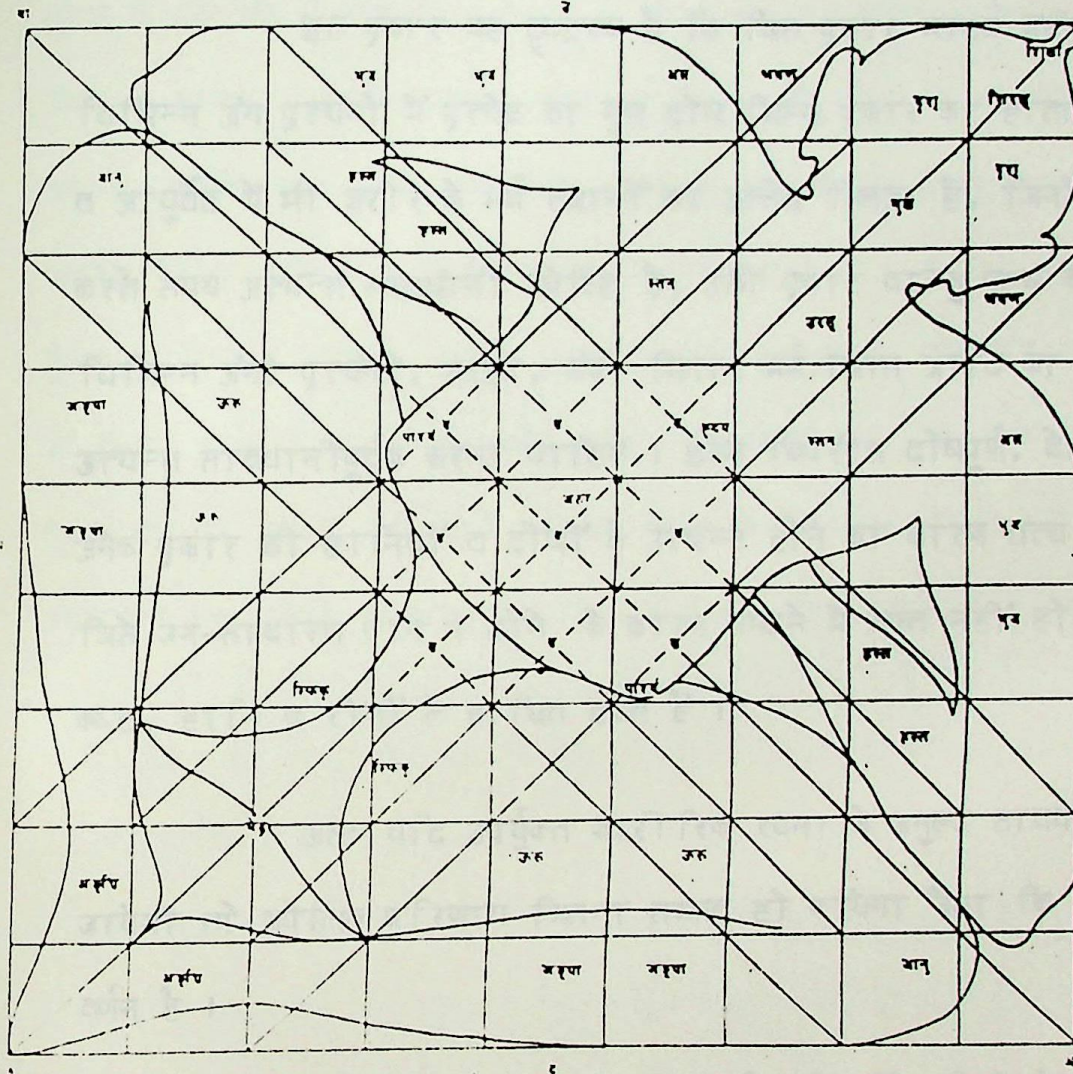
इस प्रकार से यह स्पष्ट हो गया कि वास्तु पुरुष में जो शिराएं होती हैं, उनके विभिन्न नाम हैं। इसके पश्चात् स्पष्ट होगा कि वास्तु पुरुष में नाड़ी, वंश, सन्धि इत्यादि की क्या स्थिति है, यह चित्रानुसार स्पष्ट होगा।

चित्र - 8। पद वास्तु पुरुष में -



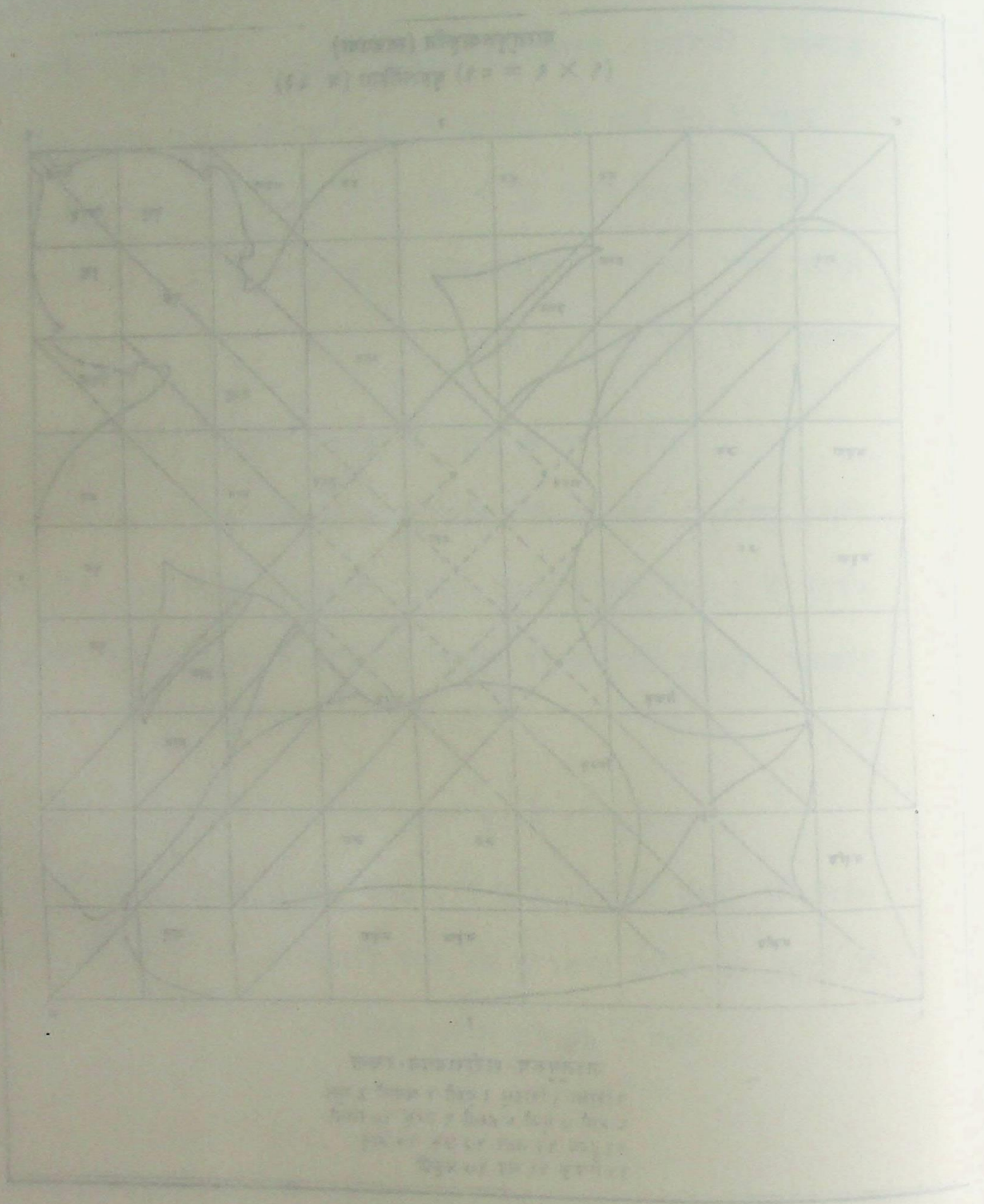






वास्तुपुरुष-शरीरावयव-रचना  
 १ शिखा २ शिरम् ३ दशो ४ भ्रवणी ५ मुख  
 ६ अग्री ७ भ्रुवी ८ हस्तो ९ उरम् १० स्तनो  
 ११ हृदय १२ जठर १३ ऊरु १४ जानू  
 १५ ग्रीवम् १६ मेढ १७ अङ्गुली







## खण्ड - 4 "ख"

### मानवीय शारीरिक रचना के गुणों का उपयोग -

इस प्रकार यह दृष्टव्य है कि जिस प्रकार मानव शरीर के विभिन्न अंग प्रत्यंगों में प्रत्येक का गुण दोष भिन्न प्रकार का होता है, व आयुर्वेद में भी शरीर के मर्म स्थानों का उल्लेख मिलता है, जिनसे व्यवहार करते समय अत्यन्त सावधानी अपेक्षित है, उसी प्रकार वास्तु पुरुष के शरीर के विभिन्न अंगों प्रत्यंगों, नाड़ी, वंश, शिरा, मर्म स्थान आदि का उपयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना चाहिए । इसके विपरीत दोषपूर्ण, वेधपूर्ण प्रयोग अनेक प्रकार की हानियों व दोषों के उत्पन्न होने का कारण तत्त्व होता है, जिसे जन-साधारण ज्ञान न होने के कारण समझने में सफल नहीं होते व दुःख कष्ट, हानि व रोगों से बाधित होते हैं ।

अतः यदि उपर्युक्त शारीरिक रचना के अनुरूप सावधानी रखी जायेगी तो अपेक्षित परिणाम मिलना सम्भव हो पायेगा जैसा कि शास्त्रों में वर्णन है ।

महर्षि महेश योगी जी के निर्देशन में डॉ. टोनी नेडर ने विभिन्न शारीरिक अंगों का वैदिक वागमय के समस्त 40 क्षेत्र व चेतना के गुणों से अन्तर सम्बन्ध स्थापित किया है । स्थापत्य वेद के अनुसार यदि वास्तु पुरुष का कोई अंग बाधित या पीड़ित होता है, तो गृह स्वामी के भी उसी अंग को कष्ट पहुँचता है । वास्तु पुरुष का प्रत्येक अंग एक देवता विशेष का, उससे



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



सम्बन्धित मंत्र, अर्थात् ध्वनि विशेष, दिशा अर्थात् गृह विशेष, इसी प्रकार वर्ण, व बलि आदि से अभिन्न सम्बन्ध रहता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वास्तु दोष के निवारणार्थ वास्तु पुरुष के उस अंग से सम्बन्धित देवता के मंत्र आदि जो विभिन्न वैदिक वांग्मय यथा - ऋग्वेद, यज्ञादि यजुर्वेद, तथा उस देवता की दिशा से सम्बन्धित रत्न, आदि ज्योतिष तथा उससे सम्बन्धित वनस्पति या औषधि के विभिन्न गुण आयुर्वेद, अर्थात् वैदिक वांग्मय के विभिन्न क्षेत्र में प्राप्त होते हैं । जिनका उपयोग भूमि पूजन, गर्भन्यास, वास्तु पूजन, गृह प्रवेश तथा गृह वास्तु दोष निरूपण आदि में किया जाता है । जो मानवीय शारीरिक रचना का उनके गुणों का, वास्तु पुरुष की अंग रचना तथा उससे संबंधित वैदिक वांग्मय के क्षेत्र से अन्तर सम्बन्ध स्थापित कर उसकी स्थापत्य वेद में उपयोगिता सिद्ध करता है ।







स्थापत्य वेद के मूल सिद्धांतों पर आधारित निर्माण कार्य में वास्तु पुरुषांगों व चेतना विज्ञान के गुणों के अन्तर्सम्बन्धों का उपयोगात्मक विवेचन :-

---

स्थापत्य वेद के मूल, सिद्धांतों का आधार उसकी परिभाषा से स्पष्ट है उसकी परिभाषा है -

" अत्यक्त को व्यक्त कर उसमें चेतना की स्थापना करने का ज्ञान-विज्ञान स्थापत्य वेद है ।" जैसा कि इस परिभाषा से स्पष्ट है कि स्थापत्य वेद में चेतना का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, यही चेतना जब निस्पन्द रहती है तो परब्रह्म स्वरूप सर्व सम्भावनाओं से युक्त या आधुनिक विज्ञान की भाषा में यूनिफाईड फील्ड रूप में रहती है, जिसे स्थितिज उर्जा रूप कह सकते हैं यही अपने को जब गतिज या अन्य उर्जा अर्थात् दृश्य प्रकाश चुम्बकीय क्षेत्र आदि रूप से व्यक्त करती है तो वह एक क्रम विशेष से करती है जो कि वास्तु पुरुष में प्रतिबिम्बित होता है, जिसमें अत्यक्त रूप को ब्रह्म स्थान व व्यक्त रूप को विभिन्न देवताओं की संज्ञाओं के अभिव्यञ्जित किया गया है । यही ब्रह्म व अन्य देवताओं की संज्ञा में चेतना के विभिन्न रूप हैं जिनकी क्रियाशक्ति को चेतना विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में वर्णित तथ्यों द्वारा समझा जा सकता है - यहाँ चेतना विज्ञान के मूल स्त्रोत वैदिक वाग्मय के एक महत्वपूर्ण अंग स्थापत्य वेद के प्रतिमा विज्ञान में विभिन्न देवी-देवताओं के रूप विधान, वर्ण, वाहन, आयुध, परिधान, भोजन, रूप में इनकी क्रिया-शक्तियों की साकैतिक अभिव्यक्ति है । इन्हीं शक्तियों का उपयोग अपनी आवश्यकता के अनुरूप स्थापत्य वेद वास्तु में निर्माण के समय वास्तु पुरुष के देवताओं के अनुसार किया जाता है । जैसाकि आगे वर्णन है -







इसी प्रकार यदि पूर्व निर्मित किसी भवम आदि में दोष रह गया है, तो उपर्युक्त तत्त्वों के स्थान व विषय विशेष की आवश्यकता के अनुरूप चेतना विज्ञान के उपर्युक्त क्षेत्रों में उपर्युक्त तथ्य का निर्णय कर दोषों के निवारण का उल्लेख शास्त्रों में प्राप्त होता है, जिसमें चेतना के ध्वन्यात्मक रूप अर्थात् मन्त्रों - जो कि ध्वनियों की विशिष्ट आवृत्तियों का संयोजन है, द्वारा, यज्ञ जिसमें कि चेतना के पदार्थ रूप में व्यक्त पदार्थों की आहुतियों द्वारा पर्यावरण, व आवश्यक उर्जा का संतुलन किया जा सके । अतः विभिन्न देवताओं की आकृतियों, वर्ण, अस्त्र-शस्त्र, वाहन, उनके मंत्र, व बलि आदि वे सांकेतिक तत्त्व हैं, जो उस देवता विशेष की क्रियात्मक क्षमता व प्रकृति को दर्शाते हैं । इनका प्रयोग उनको प्रसन्न करने अर्थात् उस ऊर्जा विशेष को जागृति करने या उस देवता विशेष के प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए किया जा सकता है । जिसके लिए उनके स्वरूप आदि का वर्णन का ज्ञान आवश्यक है जो इस प्रकार है -

ब्रह्मा :-

ब्रह्मा जी के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है -

श्लोक :-

हेमवर्णं चतुर्हस्तं चतुर्वक्त्राष्टलोचनम् ।

श्वेतवस्त्रजटामौलिष्णुसूत्रोत्तरीयकम् ॥ 78 ॥

कर्णकुण्डलसंयुक्तमण्डकर्णं चतुर्लम् ।

कमण्डलं चाक्षमाला च वामसव्यकरौऽराभ्याऽधृतौ ॥ 79 ॥

---

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - 7, श्लोक संख्या - 78 से 79 तक







श्लोक :-

अभयं ॥ये॥ दक्षिणे पूर्वैऽन्तस्य वा वरदे ॥इ॥ तरे ।

सर्वभरणासंयुक्तं गण्डेन तिलकान्वितम् ॥ 80 ॥

पदे सर्वेषु मध्ये तु सृष्टर्यमिति रूपकम् ।

एवं पितामहं ध्यात्वा ॥येत्॥ पद्मसिंहासनोपरि ॥ 81 ॥

अर्थात् -

स्वर्ण वर्ण के, चार हाँथो खले, चार मुखों, आठ नेत्रों से युक्त, श्वेत वस्त्र को धारण किए हुए, जटाधारी, मुकुट ॥ मौञ्जि ॥ से युक्त जनेउ ॥ यज्ञ सूत्र ॥ के साथ-साथ उत्तरीय को धारण किये हुये, आठो कानों में कानो के कुण्ठल धारण किए हुए तथा चार गलों से युक्त, कमण्डल व रुद्राक्ष की माला को धारण किये हुये ॥ बाँए दो हाँथो में ॥ तथा दाहिने दोनों हाँथो के अग्र भाग या हथेली उभय और वरद मुद्रा में, रहती है । सर्व आभूषणों से युक्त तिलक धारी, कमल सिंहासन पर विराजित ब्रम्हा जी का ध्यान करना चाहिए तथा इन्हें मध्य के पद में स्थित बताया गया है । सभी प्रकार के विन्यासों में और सृष्टि संरचना में उपरोक्त रूप वर्णन का प्रयोजन आवश्यक रूप से समझना चाहिए ।

आर्यमान - श्लोक -

रक्तवर्णं चतुर्हस्तमेकवक्त्रं द्विनेत्रकम् ।

करण्डमुकुटोपेतं रक्तवस्त्रोत्तरीयकम् ॥ 82 ॥

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - 7, श्लोक संख्या 80-82 तक







श्लोक :-

सर्वाभरणसंयुक्तं परहस्तौ चाब्जधारिणौ ॥भूताब्जकौ॥

पूर्वे च त्वभयं सर्वं ॥वर्णं॥ वरदं ॥द्वौ॥ वामहस्तकौ ॥ 83॥

एवमार्यदेवस्य ॥च॥ ध्यात्वा धेनुश्चा पूर्ववत् ।

अर्थात् -

दाहिने हाथ की तरह, रक्त वर्ण के, चार हाथों ॥ हस्तों ॥ एक मुस दो आँखों से युक्त तथा करण्ड से सजे हुए रक्त वर्ण के वस्त्र एवं उत्तरीय धारण किए हुए सभी आभूषणों से शोभित अर्यमान का ध्यान करना चाहिए जो दाहिने हाथों में कमल धारण किये हुए हैं, और बाँया हाथ अभय और वरद मूद्रा में है ।

विवस्वत -

विवस्वत नामक देवता का वर्णन इस प्रकार से मिलता है ।

श्लोक -

श्वेतवर्णं ॥र्णं॥ चतुर्हस्तं परे पाशा हुशौ धृतौ ॥ 84 ॥

शेषमा ॥षं तथा॥ र्यवत्प्रोक्तं ध्यात्वा देवं विवस्वतं ॥न्तं॥म् ॥

अर्थात् -

श्वेत वर्ण वाले, चार हाथों से युक्त, दाहिने हाथों में पाश अंकुश धारण किये हुए विवस्वत हैं । शेष सभी लक्षण इनके अर्यमा की तरह ही हैं ।

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 7, श्लोक 83<sup>1/2</sup>

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 7, श्लोक 84-1







मित्र -

श्लोक -

श्यामवर्णं ऋणः तु मित्रं त्रः स्याच्छेषं पूर्ववदाचरेत् ॥ 85 ॥

अर्थात् -

मित्र नामक देवता का वर्ण श्याम होता है व शेष सभी लक्षण पूर्वोक्त देवताओं की तरह ही होता है ।

भूधर -

इनका वर्णन इस प्रकार से है :-

श्लोक -

भूधरं हेमवर्णं त्वाब्जपाशापरं रेरे करे ।

शेषं प्रागुक्तवद्वपात्वा वास्तु भूतेपरिस्थितम् ॥ 86 ॥

अर्थात् -

भूधर देव का ध्यान करना चाहिए वे वास्तु के देवों में श्रेष्ठ हैं । तथा इनका वर्ण स्वर्ण का है । दाहिने हाथों में पाश व कमल धारण किये हुए हैं । शेष सभी लक्षण इनके पूर्व की ही तरह है ।

अपवत्स -

इनके स्वरूप का वर्णन इस प्रकार से है -

श्लोक -

दिभुजं च दिनेत्रं च करण्डमकुटान्वितम् ।

श्वेतवर्णातिरिक्ताक्षं हेमवर्णशुकाम्बरम् ॥ 87 ॥

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - सात, श्लोक संख्या - 85

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - साल, श्लोक संख्या - 86

ग्रन्थ - वही " " - 87







श्लोक - सर्वभिरणसयुक्तं वरदं चाङ्कुशधृतम् । च धृताङ्गम् ।

अपवत्समिति प्रोक्तं चापवत्सश्च । स्यं च । रक्तकम् ॥ 88 ॥

अर्थात् -

अप वत्स दो हाँथो, दो नेत्रों तथा करण्ड से सुशोभित है ।

श्वेत वर्ण के तथा तीसरे अतिरिक्त नेत्र से युक्त हैं । स्वर्णिम अङ्कुश तथा वस्त्र धारणकिए हुए हैं । सर्व आभूषणों से सज्जित हैं हाँथ में उनका वरदमुद्रा तथा अङ्कुश धारण किए हुए हैं ।

आपवत्स -

श्लोक -

अपवत्समिति प्रोक्तं चापवत्साश्च । स्यं च । रक्तकम् ॥ 88 ॥

शेषं प्रागुक्तवद्वपात्वा समिन्द्रं । सवित्रं । रक्तवर्णवत् ।

अर्थात् -

आपवत्स रक्त वर्ण के हैं व शेष लक्षण पूर्वोक्तदेवों के समान हैं ।

सवित्र-

इनका स्वरूप निम्नलिखित है -

श्लोक - शेषं प्रागुक्तवद्वपात्वा समिन्द्रं । सवित्रं । रक्तवर्णवत् ।

द्विभुजान्तं समुद्धृत्य शेषं तत्पूर्ववद्भवेत् ॥ 89 ॥

अर्थात् - सवित्र रक्त वर्ण के हैं । दो भुजाओं से युक्त हाँथों को ऊपर किए हुए हैं तथा शेष लक्षण पूर्वोक्त देवताओं की तरह ही है ।

---

ग्रन्थ - मानसार अध्याय -7, श्लोक संख्या 88

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - 7, श्लोक संख्या 89







सावित्र, इन्द्र व इन्द्रजय -

इन स्वरूप इस प्रकार से है ।

श्लोक -

साविन्द्र ॥ त्रं ॥ श्यामवर्ण ॥ र्ण ॥ वा ॥ च ॥ रक्तवस्त्रोत्तरीयकम् ।

इन्द्रस्य रक्तवर्ण च चेन्द्रराजस्य हेमवत् ॥ १० ॥

सर्वभरणसंयुक्त ॥ क्तं ॥ रौप्य ॥ रूप ॥ दृष्टिसमन्वितम् ।

शेषं पूर्ववद्विष्टं ध्यात्वा शेषं तु पूर्ववत् ॥ ११ ॥

अर्थात् -

सावित्र श्याम वर्णाभ है व रक्त वर्ण के वस्त्र व उत्तरीय धारण किये हुए हैं । इन्द्र रक्त वर्णाभ है तथा इन्द्रजय स्वर्ण वर्ण के हैं । ये सभी देवता सर्व भूषणों से सज्जित हैं तथा सुन्दर रूप व नेत्रों वाले होते हैं । शेष सभी त्क्ष्ण इनके भी अन्य पूर्वोक्त देवताओं की तरह होते हैं ।

रुद्र, रुद्रजय -

इनका स्वरूप इस प्रकार से है :-

श्लोक :-

रुद्रौ च रक्तवर्णौ व द्विभुजौ च त्रिनेत्रकौ ।

त्रिशूलौ वरदौ चैव चर्माम्बरोत्तरीयकम् ॥ कौ ॥ ॥ १२ ॥

जटा मकुट संयुक्तौ सर्वाभरणभूषितौ । - ।

अर्थात् -

रुद्र, रुद्रजय दोनों का ही रक्तवर्ण है । दो हाँथ व त्रिनेत्र से युक्त हैं तथा एक हाँथ में त्रिशूल व एक हाँथ वरद मुद्रा चर्म के वस्त्र व उत्तरीय धारण किए हुए हैं । जटा व मकुट से युक्त व सर्व भूषणों से सज्जित हैं ।



- अथर्व ३ ३२४, अथर्व

१. ३. ३. अथर्व ३ ३२४, अथर्व

- अथर्व

१. अथर्व ३ ३२४, अथर्व

११. ३. ३. अथर्व ३ ३२४, अथर्व

१. अथर्व ३ ३२४, अथर्व

११. ३. ३. अथर्व ३ ३२४, अथर्व

- अथर्व

अथर्व ३ ३२४, अथर्व

अथर्व ३ ३२४, अथर्व

अथर्व ३ ३२४, अथर्व

१. अथर्व ३ ३२४, अथर्व

- अथर्व ३ ३२४

- ३. ३. अथर्व ३ ३२४, अथर्व

- अथर्व

१. अथर्व ३ ३२४, अथर्व

११. ३. ३. अथर्व ३ ३२४, अथर्व

१. अथर्व ३ ३२४, अथर्व

- अथर्व

अथर्व ३ ३२४, अथर्व

१. अथर्व ३ ३२४, अथर्व



ईश -

इनका स्वरूप निम्न प्रकार से है :-

श्लोक -

वृषारूढां ऽर्द्धं सदेवीं च व्याघ्रचर्माम्बरां ऽर्द्धं तथा ॥ 93 ॥

श्वेत वर्णनिभं चैव सर्वाभरणशोभितम् ।

दक्षिणे च करे ऽर्द्धं हारिणी वामके करे ॥ 94 ॥

अभयं पूर्वके सटये वरदं वामहस्तके ।

ईशामूर्तिमिति ध्यात्वा रक्तवर्णं च शीष्पतम् ऽथचोपतिम् ॥ 95 ॥

अर्थात् -

ईश अर्थात् शिव वृषभ पर देवी सहित विराजमान हैं । वे श्वेत वर्ण के, व्याघ्र चर्म के वस्त्र धारण किए हुए हैं, समस्त आभूषणों से सुसज्जित, दक्षिण हस्त में डमरू व वाम हस्त में हरिण धारण किए हैं । अगरी दाहिना हस्त अभय मुद्रा में है व बाँया अगरी हस्त वरद मृदा में बताया गया है ।

आदित्य ऽसूर्य -

इनका स्वरूप इस प्रकार से है -

श्लोक -

ईशमूर्तिमिति ध्यात्वा रक्तवर्णं च शीष्पतम् ऽथचोपतिम् ॥ 95 ॥

द्विभुजं च द्विनेत्रं च रत्नं चैरावतवाहनम् ।

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - 7, श्लोक संख्या 93 से 95

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 7, श्लोक संख्या 95 - ।







श्लोक -

वाराङ्गधरं देवं सर्वाभरणभूषितम् ॥ ९६ ॥

नीलाम्बर धरं चैव यज्ञसूत्रोत्तरीयधृतं तम् - ।

अर्थात् -

शशिपति आदित्य रक्तवर्ण है इनके दो हस्त, दो नेत्र है ।

रथ व ऐरावत उनके वाहन हैं, एक हाथ वरद मुद्रा में है तथा एक में अंकुश धारण किये हैं । स्पर्श के आभूषणों से सुसज्जित है तथा यज्ञ सूत्र व जनेऊ और नीला वस्त्र धारण किये हैं ।

अग्नि -

श्लोक -

अग्निवर्णं चग्निदेवं मेषवाहनसंयुक्तम् ॥ ९७ ॥

द्विभुजं च त्रिनेत्रं च ज्वालासदृशमूर्ध्वजम् ।

स्त्रुकस्त्रुवं पाणियुगले स्वाहदेव्या च संयुक्तम् ॥ ९८

सर्वाभरणसंयुक्तं शेषं प्रागुक्तवद्भवेत् ।

अर्थात् -

अग्नि देव अग्नि वर्ण के, मेष वाहन से, दो भुजाओं व तीन नेत्रों ज्वाला सदृश्य केशों से युक्त है । उनके दो हाथों में एक छोटा सा व एक बड़ा सूबा है तथा देवी स्वाहा के साथ सर्वाभूषणों से सुसज्जित है । शेष सारे लक्षण पूर्वोक्त देवताओं के ही तरह से हैं ।

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - ७, श्लोक संख्या - ९६, ९७, ९८,



- अथवा

॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा  
॥ - अथवा अथवा अथवा अथवा

- अथवा

॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा  
॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा  
॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा  
॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा

- अथवा

- अथवा

॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा  
॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा  
॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा  
॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा

- अथवा

॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा  
॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा  
॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा  
॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा

॥ १॥ अथवा अथवा अथवा अथवा



यम - यम देवता का स्वरूप इस प्रकार से है :-

श्लोक -

महिषारूढं त्रिणे ऽनेत्रं च ज्वालासदृशकुन्तलम् ॥ 99 ॥

त्रिशूलं दाक्षिणे हस्ते पाशं कामकरेऽधरे ।

धूम्रवर्णं रक्तवस्त्रं देव्या यम्या च संयुक्तम् ॥ 100 ॥

यमं ध्यात्वा यथोक्तवत् सर्वाभरणभूषितम् ।

अर्थात् -

यम जैसे पर विराजमान हैं, तीन नेत्र हैं, केश ज्वाला के समान हैं, दाहिने हाथ में त्रिशूल बाँये हाथ में पाश लिए हुए हैं । वर्ण उनका धूम्र हैं, रक्त वर्ण के वस्त्र हैं, देवी यम्या के साथ सर्व आभूषणों से पूर्वोक्तानुसार सुसज्जित हैं ।

नैऋति -

इनका स्वरूप इस प्रकार से है -

श्लोक :-

नरारूढं निर्ऋतिं द्विभुजं च द्विनेत्रकम् ॥ 101 ॥

॥अ॥ सव्यहस्ते गदां चैव वरदं वामहस्तके ।

श्यामवर्णे ऽर्णमिन्द्रदेव्या ऽव्या च संयुक्तं रक्तवस्त्रकम् ॥ 102 ॥

करण्डमकुटोपेतं ध्यात्वा शेषं तु पूर्ववत् । ॥ 2 ॥

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 7, श्लोक संख्या 99-100

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 7, श्लोक संख्या 101- 102-1



— ५५ —

— ५६ —

॥ ५५ ॥

॥ ५६ ॥

॥ ५७ ॥

॥ ५८ ॥

— ५९ —

॥ ५९ ॥

॥ ६० ॥

॥ ६१ ॥

॥ ६२ ॥

— ६३ —

॥ ६४ ॥

— ६५ —

॥ ६६ ॥

॥ ६७ ॥

॥ ६८ ॥

॥ ६९ ॥

॥ ७० ॥



अर्थात् :-

नैऋति एक मनुष्य पर विराजमान तथा उनके दो हाँथ, दो नेत्र हैं । दाहिने हाँथ में गदा तथा बाँया हाँथ वरद मुद्रा में है । वर्ण श्याम है । साथ में देवी इन्द्राणी रक्तवर्ण के वस्त्र धारित किये व कण्ड सुशोभित हैं । शेष लक्षण पूर्वोक्तानुसार हैं ।

वरुण -

वरुण देवता का स्वरूप इस प्रकार से है -

श्लोक -

वरुणं मकरारूढं भरणया सह सेवितम् ॥ 103 ॥

भिभुजं च द्विनेत्रं च कण्डमकुटान्वितम् ।

पाशाङ्कुशधरं चैव धवलं रक्तं ऽक्तं वाससम् ॥ 104 ॥

यज्ञ सूत्रोत्तरीयं च नानाभरणभूषितम् । -।

अर्थात्-

वरुण देव मकर ऽमगर पर विराजित हैं साथ में देवी भरणी भी हैं । उनके दो हाँथ दो नेत्र हैं । कान के कुण्डल, कण्ड तथा मुकुट, पाश, व अंकुश धारण किए हुए है वस्त्र रक्त वर्ण का है । यज्ञ सूत्र तथा जनेऊ धारण किए हुए हैं, तथा सर्व भूषणों से सज्जित है । वर्ण उनका श्वेत है ।

---

ग्रन्थ - मानसार - अध्याय - 7, श्लोक संख्या 103 - 104







वायु -

वायु देव का स्वरूप निम्नलिखित रूप में दर्शाते हैं -

श्लोक -

वायुदेवं मृगारूढं मारुल्या सह सेवितम् ॥ 105 ॥

द्विभुजं च त्रिनेत्रं च पार्श्वं च वरदं तथा ।

शेषं च पूर्ववद्वयात्त्वा शशिरूपमिहोच्यते ॥ 106 ॥

अर्थात् - वायुदेव हरिण पर विराजमान हैं साथ में देवी मारुती भी हैं ।

वे दो हस्त तथा तीन नेत्रों से युक्त हैं पाश लिये हुए हैं तथा अभय मुद्रा में हैं । शेष लक्षण पूर्वोक्तानुसार ही हैं ।

शशी §सोम§

इनका स्वरूप इस प्रकार है -

श्लोक -

शेषं च पूर्ववद्वयात्त्वा शशिरूपमिहोच्यते ॥ 106 ॥

द्विभुजं च द्विनेत्रं च पङ्कजद्वयधारिणम् ।

अश्वारूढं चन्द्रिकया संयुक्तं श्वेतवर्णकम् ॥ 107 ॥

श्वेताम्बरधरं यज्ञसूत्रं च मुकुटान्वितम् ।

सर्वाभरणसंयुक्तं सौम्यं ध्यात्वा यथोक्तवत् ॥ 108 ॥ - ।

ग्रन्थ मानसार - अध्याय - सात, श्लोक संख्या - 105-106

ग्रन्थ मानसार - अध्याय - सात, श्लोक संख्या - 106-108



— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —

— ८८ —



अर्थात् -

सोम देव के दो हाँथ, दो नेत्र हैं, दो कमल का फूल लिये,  
अश्व पर विराजमान हैं साथ में देवी चन्द्रिका है । श्वेत वर्ण के हैं । श्वेत  
वस्त्र, यज्ञ सूत्र व मुकुट धारण किए हुए हैं । तथा सर्वाभूषणों से सुसज्जित हैं ।

पर्जन्य, जयन्त, महेन्द्र -

इनका स्वरूप इस प्रकार से है -

श्लोक -

पर्जन्य रक्तवर्णं च महाजयन्तं श्यामवर्णकम् ।

महेन्द्र पीतवर्णं च द्विभुजं च द्विनेत्रकम् ॥ 109 ॥

करण्डमुकुटोपेतं सर्वाभरणशोभितम् ।

पाशपद्मधारी च अधरौ चैव रक्तवस्त्रोत्तरीयकौकम् ॥ 110 ॥

अर्थात् -

पर्जन्य - रक्त वर्ण के हैं, जयन्त श्यामवर्ण के हैं, महेन्द्र पीत वर्ण  
के हैं, इन तीनों के ही दो हाँथ, दो नेत्र हैं । तीनों ही देवता कर्ण कुण्डल,  
करण्डल, मुकुट व सर्व आभूषण धारण किए हैं । हाँथों में पाश और कमल लिए  
हैं । तथा रक्त वर्णाभि वस्त्र तथा उत्तरीय धारण किए हैं ।

सत्य, भृगेश, अन्तरिक्षा -

इन तीनों का स्वरूप इस प्रकार है -

श्लोक - सत्यं च श्वेतवर्णं च भृगेशं धूमवर्णकम् ।

नीलवर्णं चान्तरिक्षां च द्विभुजं च द्विनेत्रकम् ॥ 111 ॥

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 7, श्लोक 109, 110, एवं 111.







श्लोक -

दण्डं पाशं च शूलं च वरदं च यथाक्रमम् ।

शेषं च पूर्ववद्भगत्वा सर्वाभरणभूषितम् ॥ ११२ ॥

अर्थात् -

सत्य श्वेत वर्ण के, भृगेश धूम्र वर्ण के और अंतरिक्षा - श्याम वर्ण के हैं । इन तीनों ही देवताओं के दो हाथ, दो नेत्र, हैं । वरद मुद्रा में हैं। दण्ड पाराशूल वरद तथा त्रिशूल लिये हुए हैं । तथा तीनों ही सर्व आभूषणों से सुसज्जित हैं । शेष वर्णन पूर्वोक्तानुसार है ।

पूषान, वितथ, गृह्क्षत -

इन तीनों देवताओं का स्वरूप इस प्रकार से है -

श्लोक -

पूषं च शूषाणं रक्तवर्णं च वितथं च पीतवर्णकम् ।

गृह्क्षतं कृष्णवर्णं च वस्त्रकं रक्तपीतकम् ॥ ११३ ॥

गदा दाशूलश्च शूलं च शक्तिश्च कृतं च त्रयः पाशौ समुद्धृतौ ।

शेषं पूर्ववदुष्टिं करण्डमकुटान्वितम् ॥ ११४ ॥

अर्थात् -

पूषान रक्त वर्ण का, वितथ पीत वर्ण का और गृह्क्षत कृष्ण वर्ण का है । प्रत्येक रक्त व पीत वर्ण के वस्त्र धारण किए हैं । रक्त वर्ण के वस्त्र पूषान और पीत वर्ण के वस्त्र वितथ व गृह् क्षत, या फिर पीत

१. ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - ७ , श्लोक संख्या ११२

१. ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - ७ , श्लोक संख्या ११३-११४



- कर्म

१. प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

- प्रकृत्या

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

- प्रकृत्या, प्रकृत्या, प्रकृत्या

- १ १ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

- कर्म

१. प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

- प्रकृत्या

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं

॥ १॥ ॥ प्रकृत्यात् तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं तं ज्ञातं



वर्ण के वस्त्र रक्त वर्ण की रेखाओं या पट्टिकाओं से युक्त । गदा लिए हुए , शूल लिए हुए, माला धारण किए हुए दो पाश लिए हुए, कान के कुण्डल व करण्ड मुकुट धारण किए हुए है, तथा शेष लक्षण पूर्वोक्तानुसार हैं-

गन्धर्व, भृंग, भृश -

इनका स्वरूप इस प्रकार है -

श्लोक -

गन्धर्व रक्तवर्ण च भृङ्गः स्याज्जनवर्णकम् ।

भृशस्य धूम्रवर्ण च शेषं प्रागुक्तं ब्रह्मैव ॥ ११५ ॥

अर्थात् -

गन्धर्व - रक्त वर्ण के । भृंग अंजन के समान वर्ण के । और भृश धूम्र वर्ण के हैं । शेष लक्षण पूर्वोक्तानुसार हैं :-

दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त -

इन तीनों देवताओं का स्वरूप इस प्रकार से है -

श्लोक - दौवारिकः कृष्णः श्यामवर्ण सुग्रीवं रक्तवर्णकम् ।

पुष्पदन्तं तथा कृष्णं गदापाशोद्धतं तथा ॥ ११६ ॥

शेषं पूर्ववदुद्दिष्टं वस्त्रं च मुकुटद्वयम् ।

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - ७, श्लोक संख्या ११५

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - ७, श्लोक संख्या ११६-१



एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।  
एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।  
एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

- एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

- एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

- एतन्मया ।

। एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

। एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

- एतन्मया ।

। एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

- एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

- एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

- एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

। एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

। एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

। एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

। एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।

। एतन्मया । एतन्मया । एतन्मया ।



दौवारिक - श्यामवर्ण हैं, सुग्रीव रक्त वर्ण के, पुष्पदन्त, कृष्ण वर्ण के हैं । प्रत्येक दोनों हाँथों में एक गदा तथा एक पाश धारण किए हुए हैं । वस्त्र तथा दो मुकुट या करण्ड धारण किए हुए हैं । शेष सभी लक्षण पूर्वोक्तानुसार हैं ।

असुर, शोष, रोग -

इनके लक्षण इस प्रकार से हैं :—

श्लोक -

असुरं कृष्णवर्णं च शेषस्य धूम्रवर्णकम् ॥१७॥

रोगं च कृशरूपं स्याद्रक्ताक्षौ श्रेवतवर्णकौ ॥१८॥

शूलं कपालं चेद्दृष्ट्य शेषं प्रागुक्तवद्भवेत् ॥१८॥

अर्थात् -

असुर कृष्णा वर्ण के हैं । शेष धूम्र वर्ण के हैं ।

रोग - पीत वर्ण के हैं, रोग - कृष्णकाय, दुर्बल, लाल नेत्र वाले हैं। वे शूल, व खोपड़ी ॥कपाल॥ धारण किए हुए हैं । शेष लक्षण पूर्वोक्तानुसार हैं ।

नाग -

इनका स्वरूप इस प्रकार से है ।

श्लोक - भुजङ्ग. ननं नागस्य पीतवर्णकरद्वयम् ।

मुस्तं शूलमुद्धस्य सर्वाभरणभूषितम् ॥१९॥

ग्रन्थ - मानसार अध्या - ७, श्लोक संख्या - ११७-११८ एवं ११९



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

- १०९ -

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

- ११० -

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

- १११ -

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । - ११२ -

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

- ११३ -

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । - ११४ -

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । - ११५ -



अर्थात् -

नाग या साँप के मुख की आकृति होती है - वर्णपीत है, दो हाथ है । मूसल, शूल तथा सर्व आभूषणों से सुसज्जित हैं ।

मुख्य -

इनका स्वरूप इस प्रकार से है -

श्लोक -

मुख्यं गजमुखं चैव द्विभुजं मकुटान्वितम् ।

रक्तवर्णशुभोपेतं श्यामवर्णाशशोभितम् ॥ 120 ॥

पाशाङ्कः शोद्धृतौ हस्तौ सर्वाभरणभूषितम् ।

अर्थात् -

मुख्य का गज मुख है, दो हस्त एवं मुकुट से युक्त हैं । रक्त वर्णाभि वस्त्र जो नील वर्णाभि किनारे से युक्त, वस्त्र धारण किए हुए हैं । हाथों में पाश व अंकुश लिये हुए हैं एवं आभूषणों से सुसज्जित हैं ।

भल्लाट -

श्लोक -

भल्लाटं मेषवक्त्रं च जयं ॥ शेषं ॥ तत्पूर्ववदभवेद् 121 -1

अर्थात् - भेड़े का मुख है, तथा शेष सब पूर्वोक्तानुसार ।

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 7, श्लोक संख्या 110-1,

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 7, श्लोक संख्या 121-1,







मृग, अदिति, उदित,

इन तीनों देवताओं का स्वरूप इस प्रकार है -

श्लोक -

मृगस्य मृगवत्क्रं च मृगवर्णानि ॥ १२२ ॥ च मौलिका ॥ कम् ।

शूलं च खेटको ॥ कमु ॥ द्रव्य अ ॥ चा ॥ दितिं नीलवर्णक ॥ का ॥ म् ॥ ॥ १२२ ॥

खड्गं कपालमुद्धस्य मकुटाभरणान्वित ॥ ता ॥ म् ।

उदितं रक्तवर्णं च सिंह वक्त्रं गदाधरम् ॥ १२३ ॥

शेषं प्रागुक्तवद्वयात्त्वा चैव प्रोक्तं पदेऽमरात् । - २

अर्थात् -

मृग का हरिण की तरह, मुख, हरिण की तरह वर्ण है । मुकुट से शोभित है । तथा शूल और ढाल, खटेक लिए हुए है ।

अदिति - नीलावर्ण, खड्ग तथा कपाल लिए हुए, मुकुट व अन्य आभूषणों से सज्जित है ।

उदित - रक्त वर्ण, सिंह की तरह, मुख, तथा गदालिए हुए । शेष लक्षण पूर्वोक्तानुसार है ।

चरकी, विदारी, पूतना, पाप राक्षसी -

इनका स्वरूप इस प्रकार है -

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - ७, श्लोक संख्या - १२२=१२३

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - ७, श्लोक संख्या - १२३-१



- ३ वाक्य सप्त पञ्चसु तस्य विवक्षितं तस्मिन्

- कतिपय

१. प्रथमोऽर्थः सति विवक्षितं तस्य विवक्षितं तस्मिन्

२. ११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन्

३. ११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन्

४. ११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन्

५ - १. ११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन्

- प्रथम

१. ११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन्

२. ११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन्

३. ११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन् - विवक्षित

४. ११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन्

५. ११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन् - विवक्षित

६. ११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन्

- विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन्

- ११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन्

११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन् - विवक्षित

११ वाक्यसु विवक्षितं तस्मिन् तस्य विवक्षितं तस्मिन् - विवक्षित



चरकी श्वेत वर्णा च बिदारी रक्तवर्णका ॥ 124 ॥

पूतना श्यामवर्णा च नीला स्थात्पापराक्षसी ।

एवं चतुर्विधाः प्रोक्ताः शूलं कपालमुर्द्धतौ ॥ 125 ॥

रक्तवस्त्रधरास्तासां द्रुष्ट्वा ऽचोऽग्रं विलोचनी ऽनेऽ

रक्तकेशैर्विकीर्णैश्च चैशादिकर्णयोर्व ऽकर्णानां बऽ हिः ॥ 126 ॥

अर्थात् -

चरकी - श्वेत वर्ण की विदारी - रक्त वर्ण की, पूतना श्याम वर्ण की, पापराक्षसी - नीले वर्ण की, ये चार राक्षसियों को कहा गया है । इन चारों के दो हाथों में शूल व कपाल है । रक्त वर्ण के वस्त्र धारण किए हैं । सौंप के तुल्य बड़े दाँत व दो नेत्र डरावने या भयानक होते हैं । इनके बाल भी रक्त वर्ण के होते हैं । तथा इनकी स्थिति उ.पू. से क्रमशः वास्तु पुरुष के बाह्य भाग में होती है ।

वास्तु पुरुष के अंग एवं उनसे संबंधित देवता -

स्थापत्य वेद, वास्तु शास्त्र के अनुसार निर्माण के लिए वास्तु पुरुष के अंग और उनसे संबंधित देवता का ज्ञान आवश्यक है । जो निम्नानुसार है -

श्लोक -

स्थितवास्तु पुरुषोऽध्वे ऽपेऽ तद्ब्रम्हादिदे ऽदैऽ वतान्स्थितान् ।

तद्वास्तुपुरुषं ज्ञात्वा ब्रम्हाग्निं मध्यकार्यं च ॥ 127 ॥

ग्रन्थ - मानसार्, अध्याय - 7 श्लोक संख्या 124से 126

ग्रन्थ - मानसार्, अध्याय = 7, श्लोक संख्या 127







आर्यस्य च पदे मूर्ध्निर्धार्ष्ट्यं प्रगुह्यतो विदुः ।

ऐशाने कोणसूत्रे तु सव्यहस्तं प्रसारितम् ॥ 128 ॥

नैऋत्ये कोणसूत्रे तु सव्यपादं प्रसारितम् ।

अग्निर्कोणे तु सूत्रे तु ॥ अ ॥ सव्यहस्तं प्रसारितम् ॥ 129 ॥

वायुकोणे च सूत्रेत्वा ॥ तु वा ॥ मपादं प्रसारितम् ।

विवस्वति पदे चैव दक्षिणां पार्श्वमीरितम् ॥ 130 ॥

भूधरस्य पदे चैव बामपार्श्वं विधीयते ।

मित्रस्य च पदे चैव ज्ञत्वा मेढ्रमुदीरितम् ॥ 131 ॥

अर्थात् -

ब्रम्हा व अन्य देवताओं के पदों में वास्तु पुरुष का विकल्पन यह वास्तु पुरुष कहलाता है, शरीर का मध्य भाग ~~ह्रस्व~~ पदों में कहा गया है ।

वास्तु पुरुष का सिर आर्य ॥ आर्यमान ॥ पद में कहा गया है । वह अधोमुख उत्तर पूर्व दिशा में पड़ा है । ॥ उ. पू. मे सिर ॥ उसका बाँया हाँथ उ. पू. की किनारे की रेखा से ॥ ईशान कोण ॥ से प्रसारित होता है । उसका दाँया भाग विवस्वत पद में व बाँया भाग ॥ वाम पार्श्व ॥ भूधर पद में कहा गया है । उसका लिंग मित्र पद में कहा गया है ।

---

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय -7, श्लोक संख्या - 128 से 131 तक



१. अथ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ १०१ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ १०२ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ १०३ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ १०४ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ १०५ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ १०६ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ १०७ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ १०८ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ १०९ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ ११० ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।

- ७९ -

१. अथ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ १११ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ ११२ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ ११३ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ ११४ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ ११५ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ ११६ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ ११७ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ ११८ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ ११९ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।  
॥ १२० ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।

॥ १२१ ॥ यजुर्वेदस्य सूक्तानि ।



श्लोक -

कर्णे मर्मशिरा प्रोक्ता षड्विंशद् वंशः हृदये कथम् यमेकम्

पश्चिमे दक्षिणे वंशो मूलं तत्प्रागुदमयोः ॥ 132 ॥

एवं वास्तुपुरुषं कुब्जं च कुटिलि ल कं कृशम् ।

वास्तु वास्तु प्रयत्नेन देवानां तु नृणां तथा ॥ 133 ॥

शुभाशुभविधातारं तस्याङ्गनांङ्गानि न पीडयेत् ।

अङ्गानादङ्गहीनं च चेत् कर्ता चैव विनश्यति ॥ 134 ॥

तस्मात्तु शिल्पिभिः नः प्राज्ञैः ज्ञां ऊहापोहान् न योजयेत् युः

देवानामपि सर्वेषां ब्रम्हाणां णो पश्य बलिं ते विदुः ॥ 135 ॥

तत्तमदेऽमरान् सर्वान् स्थितान्भक्तिं प्रदक्षिणम् ॥ 136 ॥

अर्थात् -

उसके दो कान, अनेक नाड़ी और शिरा और एक हृदय कहे गये हैं । छः वंश हैं । एक वंश प. मे द. जाती है । और मुख्य वंश पू. से उ. की ओर जाती है । इस प्रकार का वास्तु पुरुष, कुटिली और कृश है ।

स्थापत्य के इन तथ्यों या नियमों को किसी भी प्रकार के देव एवं मानव भवनों के निर्माण में विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए । क्योंकि यदि भवन का कोई भी भाग दूषित या पीड़ित हो जाता है तो गृह स्वामी उससे पीड़ित होता है तथा उसका विनाश होता है । इसलिए एक अच्छे कुशल स्थापति को इन शास्त्रों व नियमों का पालन करना चाहिए, तथा उसमें कुछ भी कम या ज्यादा नहीं करना चाहिए ।

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय -7, श्लोक संख्या - 132 से 136







परम्परा के अनुसार गृहारम्भ में बलिकर्म अवश्य करना चाहिए ।  
ब्रम्हा तथा अन्य सभी देवताओंकेबलि अवश्य देना चाहिए जो उन देवों के पदों  
में होनी चाहिए ।

इसी प्रकार से समराङ्ग. ण सूत्रधार, मयमत, बृहत्संहिता आदि  
ग्रन्थों में भी वंश शिराओं तथा त्रुटियों से सम्बन्धित विचार मिलते हैं यथा -

सुख मिच्छन् ब्राम्हणं यत्ना द्वाद्गृही गृहान्तःस्थम् ।

उच्छिष्टाश्च पथाता द्गृहपति रूपतप्यते तस्मिन् ॥

इसी प्रकार से मयमत के अनुसार कुछ पदों में घर नहीं बनाना  
चाहिए-

गृहे-गृहे मनुष्याणां शुभदेशुभकरः स्मृतः ।

तस्याङ्गानि गृहाङ्गैश्च विद्वान नैवोपपीडयेत् ।

व्याधियस्तु यथासङ्ख्यं भर्तुरगतु संश्रिता ।

तस्मात् पदिहरेद विद्वान पुरुषाङ्गं त सर्वथा ॥ १२१

इसी तरह समराङ्ग. ण सूत्रधार के अनुसार -

वंशास्तकस्य यः सन्धिः स सन्धिरिति कीर्तितः ॥

ये पुनः स्युस्तदङ्गनां प्रोक्तास्ते चानुसन्धयाः ।

बालाग्रतुल्य सन्धीनां प्रमाणां परिक्षते ।

तदधर्मसन्धीनां प्रमाणं समुदीरितम् ।

ग्रन्थ - बृहत् संहिता । अध्याय - 52, पंक्ति संख्या - 64

ग्रन्थ - मयमत अध्याय - 7, पंक्ति संख्या - 54 से 56

ग्रन्थ - समराङ्ग. ण सूत्रधार अध्याय - 15, पंक्ति संख्या 30-34 ॥ मूल संस्कृत से १







यत्नेनैतानि सन्त्यज्य काकिलिङ्गविशारदः ॥ 32 ॥

द्रव्याणि प्रयतो नित्यं स्थपतिर्विनिवेशयेत् ।

महावंशास्य नाकान्ति कुर्याद द्रव्येन केनचित् ॥ 33 ॥

इतरेषु पुनर्द्रव्यं मध्यवर्षेषु सन्त्यजेत् ।

अर्थात् -

आठो वर्षों की जो संधियाँ हैं, उनको सन्धि कहा गया है ।

फिर जो वंशों के अंगों की सन्धियाँ हैं उनको अनुसन्धि कहा गया है । सन्धियों का प्रमाण, वालाग्र के समान कहा गया है । उनका आधा प्रमाण अनुसन्धियों का प्रमाण कहा गया है । यत्न से इनको वास्तु - विद्या-विशारद स्थपति त्याग कर द्रव्यों का विनिवेश करें ।

महावंशादि = पीड़न फल -

महावंशसमाक्रान्तौ भवेत् स्वामिवधो ध्रुवम् ॥ 34 ॥

वर्षेण तपनाद् भीतिं वंशानां पीडनाद् विदुः ।

उपर्मणि रोगाय मर्मणि कुलहानये ॥ 35 ॥

उद्वेगायार्थनाशाय सिराश्च स्युः प्रपीडिताः ।

कलिः स्यात् सन्धिविद्वेषु पीडितेष्वनुसन्धिषु ॥ 36 ॥

तस्मादेतानि सर्वाणि पीडितान्युपलक्षयेत् ॥ 37<sup>1/2</sup> ॥

---

ग्रन्थ - संमराणि सूत्रधार - अध्याय - 15, श्लोक संख्या 32 से 37-1



॥ ११ ॥ ...

॥ ...

॥ १२ ॥ ...

॥ ...

- ...

॥ ...

॥ ...

॥ ...

॥ ...

॥ ...

- ...

॥ १३ ॥ ...

॥ ...

॥ १४ ॥ ...

॥ ...

॥ १५ ॥ ...

॥ १६ ॥ ...

॥ ...



किसी भी द्रव्य से महावंश का अतिक्रमण न करें । अन्य मध्य वंशों में द्रव्य को छोड़ दे । महावंश के अतिक्रमण में स्वामिवध निश्चित है । वंशों के पीड़न से वर्णा की भीति और तपन भीति प्राप्त होती है । उपमर्मों के पीड़न से रोग प्राप्त होता है । मर्मों के पीड़न से कुल-हानि आपत्ति होती है । शिराओं के पीड़न से उद्वेग और अनर्थ उपस्थित होता है । सन्धियों और अनुसन्धियों के पीड़ित होने पर कलि उपस्थित होता है । इसलिए इन सबको पीड़ित होने से बचावें ।

वास्तु - देह में शिराओं, अनुशिराओं, नाड़ियों वंशों एवं अनुवंशों तथा मर्मों को यत्न में समझ कर ही वास्तुचारम्भ करें और उसका फल यह है जो इनका बेध त्याग करें उसको आपत्ति नहीं प्राप्त होती ।

बलिकर्म :-

स्थापत्य वेद और वैदिक वांगमय के अन्तर सम्बन्ध को दर्शाता एक महत्वपूर्ण क्षेत्र स्थापत्य वेद के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाला "बलिकर्म विधान" है । इसमें वास्तु पुरुष के प्रत्येक देवता के लिए एक मंत्र जो वेद से लिया गया, वनस्पति, व खाद्य आदि जिनके गुणों का आयुर्वेद में वर्णन है । इस प्रकार अनेक वैदिक वांगमय के क्षेत्रों का ज्ञान इसमें प्रयुक्त होता है । बलिकर्म विधान में वास्तु पुरुष के देवताओं के लिए प्रयुक्त बलि सामग्री का वर्णन आता है । जो पदार्थ उस स्थान विशेष की उर्जा को साकेतिक रूप से दिग्दर्शित कराते हैं । इस ज्ञान का प्रयोग किसी गृह वास्तु की उर्जा संतुलन के लिए किया जा सकता है ।







विभिन्न प्रकार के पद विन्यासों, उनके महत्व एवं उनमें स्थापित देवता, उनका पद स्थान, विभिन्न प्रकार के विन्यासों में उनका स्थान तथा समस्त देवताओं के रूप, स्वरूप, रंग, वस्त्र, आयुध यानि अस्त्र-शस्त्र के बारे में विस्तार से निर्णय करने के पश्चात् अब आगे - देवताओं को चढ़ाई जाने वाली बलि के विधान के बारे में स्पष्ट करना भी परम आवश्यक है । अतः यहाँ पर मानसार नामक ग्रन्थ में जो देवताओं का बलि कर्म बताया है, उसका आधार लेकर विषय को स्पष्ट करेंगे - यह बलिकर्म ही यह तथ्य स्पष्ट करता है कि कौन सा देवता किस विशेष बलि आदि पदार्थ से प्रसन्न या जागृति होता है । वैज्ञानिक रूप से यह उस उर्जा विशेष को प्राप्त करने की प्रक्रिया का दिग्दर्शन है ।

श्लोक -

बलिकर्मविधिं च ये शास्त्रे संक्षिप्तयेऽधुना ।

ग्रामादीनां च सर्वेषां विन्यासार्थं बलिं क्षिपेत् ॥ १ ॥

वास्तुशुद्धिं ततः कृत्वा देवतार्थं पदं न्यसेत् ।

मण्डूकपदमेवाऽपि परमशाधिकमेव वा ॥ २ ॥

ब्रम्हादिदेवतानां च राक्षसानां बलिं क्षिपेत् ।

कृतोपवासः स्थपतिः शुद्धदेहः प्रसन्नधौः ॥ ३ ॥

उत्कृष्टवेषो बल्यर्थं रात्रौ द्रव्यान् ऽग्निं समाहरेत् ।

---

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - ८ श्लोक संख्या - १ से ३<sup>१/३</sup> तक







अर्थात् -

इस शास्त्र में बलिकर्म का विधान स्तूप में दिया गया है ।

ये बलि ग्राम नियोजन के समय की जाना चाहिए । यह सभी ग्राम, नगर, दुर्ग, वाणिज्यिक नगर तथा सभी मंदिरों व रहने के लिए बनाये गये घरों को बनाने के लिए प्रयुक्त होता है । - भूमि को सबसे पहले शुद्ध करना चाहिए, उसके बाद पद के देवताओं को अंकित करना चाहिए । माण्डूक्यया परमशायिका पद विन्यास में इनको करना चाहिए । इसमें ब्रम्हा तथा अन्य देवताओं के साथ ही साथ राक्षसों को भी बलिदान करना चाहिए ।

स्थापित को उपवास रखना चाहिए §पूरी रात्रि§ तथा पवित्र शरीर से व प्रसन्न मन से अपने श्रेष्ठ वस्त्रों को पहनकर बलि देने वाली समस्त वस्तुओं को रात्रि में ही एकत्र कर लेना चाहिए ।

श्लोक -

प्रभाते दिवसे द्रव्येनैः §ण्ये§ कैकाने §न्ये§ ककन्यकः ॥ 4 ॥

अथवा गणिकाहस्ते पात्रे सवर्णादिकान्धूता §न्§

स्थापतिश्चैकपत्रेण धारयेद्दामके करे ॥ 5 ॥

द्रव्याणि क्षिप्य §प्त्वा§ द्यात्वसव्यहस्तेन मन्त्रवित् ।

सकलीकरणं कृत्वा पुण्याहं वाचयेत्ततः ॥ 6 ॥

सर्वमङ्गलघोषेश्च बलिं दत्त्वा यथाक्रमात् §क्रमम्§ ।

तत्तन्नाम्नैश्च §म्ना च§ देवानामोङ्कुरादिनमोन्तकम् ॥ 7 ॥

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 8 श्लोक संख्या 4 से 7







मन्त्रमेतत् ॥ तम् ॥ समुच्चार्य ब्रम्हादिभ्यो बलिं हरेत् ।

देवालयार्थं सामान्यं ग्रामार्थं तु विशेषकम् ॥ ८ ॥

दध्योदनं च सर्वं तत्सामान्यं च बलिं विदुः ।

अर्थात् -

दूसरे दिन प्रातः काल स्थापित की सभी बलि की वस्तुओं को एक पात्र में रख कर उसे एक कन्या के साथ या गणिका के साथ ॥ जो कि स्वर्ण आभूषणों से युक्त हो ॥ के हाँथ में और स्वयं उस पात्र को अपने बाँयें हाथ से पकड़ कर मंत्रोच्चारण के साथ अपने दाँये हाँथ से फेंकते हुए बलि कर्म की वस्तुओं को समर्पित करना चाहिए ।

इसके पश्चात् सभी वस्तुओं को एक साथ द्रव्य वचनों को ॥ मंत्रोच्चारण ॥ बोलते हुए समर्पित करना चाहिए । समस्त मंगल ध्वनियों के साथ ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं को उनके नाम को उच्चारण करते हुए जो कि ओङ्कार व नमः के बीच होना चाहिए, बलि देनी चाहिए । मंदिरों के निर्माण के आरम्भ में साधारण बलि देनी चाहिए तथा ग्राम के लिए विशेष बलि देनी चाहिए । दधि तथा ओदन ये साधारण बलि कही गई है ।

श्लोक -

ब्रम्हादीनां च देवानां धूपदीपाक्षतैरपि ॥ ९ ॥

अथ वक्ष्ये विशेषाख्यं बलिं शास्त्रोक्तवत्कमान् ॥

स्त्रग्गन्धधूपदुग्धं च माधवाज्यं पायसमो ॥ सौ ॥ दनम् ॥ १० ॥

ग्रन्थ - मानसार् - अध्याय - ८, श्लोक संख्या - ८-१ एवं ९-१०



॥ १ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ २ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ ३ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥

- ३१४ -

॥ ४ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ ५ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ ६ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ ७ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ ८ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥

॥ ९ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ १० ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ ११ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ १२ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ १३ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ १४ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ १५ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥

- ३१५ -

॥ १६ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ १७ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥  
॥ १८ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥

॥ १९ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥



ब्रम्हणे च बलिं दद्याल्लाजेन सह तन्त्रवित् ।

आर्याय फलभक्ष्यं स्यात्तिलमौदनकं दधि ॥ ११ ॥

पश्चाद्विवस्वते दद्यादधिपूर्ववर्षं च मर्दं मित्रं के ।

महीधराय क्षीरं स्यादभ्यन्तरबलिं लिः स्मृतम् तः ॥ १२ ॥

पर्जन्यस्य तु तत्प्रोक्तं पुष्पं च नवनीतकम् ।

दत्त्वा जघाजं यन्ताय बलिं पुष्पकोष्ठं पिष्टं महेन्द्रकेन्द्राय ।

मधुगन्धोन्धे भास्करः रायं स्यात्सत्याय मधुरे धेवे व च ।

अर्थात् -

अब ब्रम्हा और अन्य देवताओं की बलि इस प्रकार से है,

अक्षत, धूप, दीप, ये विशेष बलि शास्त्रों में कही गई है ।

ब्रह्मा को बलि में पुष्प माला, सुगन्धित द्रव्य, धूप, दुग्ध, शहद,

स्वच्छ मक्खन, चावल तथा भुंजे हुए धान्य देते हैं ।

अर्यमान को स्वादिष्ट फल देते हैं ।

विवस्वत को तिल, चावल तथा दही देते हैं ।

मित्र को पूर्वोक्त चीजें मय दही बलि देते हैं । महीधर भूधर

को क्षीर बलि देते हैं । पर्जन्य को पुष्प तथा ताजा मक्खन की बलि देते हैं ।

जयन्त को पुष्प व पिष्ट की बलि देते हैं । भास्कर आदित्य को तथा सत्य

को शहद देते हैं । तथा इत्र की बलि देते हैं ।

---

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - ८ श्लोक संख्या - ११ से १३







नवनीतं भृशस्योक्तं गगने ॥ नाय ॥ च ततो बलिम् ॥ १४ ॥

हारिद्र्यूर्णमाषान्तं दुग्धाढ्यं ॥ ज्यं ॥ सा ॥ त ॥ गरस्य तु ।

शुद्ध क्षीरं तथा चाग्नेः परमान्नं तु पुष्पिणे ॥ न्नं पूषणास्तथा ॥

वितथे स्यात्तु ॥ यस्य तु ॥ पकान्नं राक्षासस्य तु मांसकम् ।

क्षामान्नं तु सरं प्रोक्तं बलिं चा ॥ लिचौ ॥ न्तकरस्य वै ॥ १६ ॥

अगुरु गन्धकं चैव गन्धर्वस्य बलिं क्षिपेत् ।

पारावायुष ॥ षो ॥ भृङ्गराजस्य बलिरिष्यते ॥ १७ ॥

दध्योद्धनं भृशस्योक्तं नैऋत्ये तु ॥ त्यस्य ॥ बलिं त ॥ लिस्ट ॥ तः ।

तिपिण्डौदनं प्रोक्तं दौवारिकं ॥ क ॥ बलिं ॥ लिः ॥ ॥ १८ ॥

सुग्रीवे ॥ वस्य ॥ मोदकं प्रोक्तं पुष्पदन्तम ॥ न्ताया ॥ तः परम् ।

अर्थात् -

ताजा मक्खन भृष को बलि देना चाहिए ।

गगन ॥ आंतरिक्षा ॥ को हल्दी का चूर्ण, भाशा, ॥ ड्डद ॥

दूध, घी, और तगर का पौधा देते हैं ।

पूषान को परमान्न देते हैं ।

वितथ को भात की बलि देते हैं ।

गृह्णात को मांस की बलि देते हैं ।

यम को क्षामान्त ॥ सूखा-चावल या अक्षत ॥ तथा सरं देते हैं ।

गन्धर्व को अगुरु तथा इत्र देते हैं ।

ग्रन्थ - मानसार - अध्याय - ८ श्लोक संख्या - १४-१८







भृंगराज को समुद्री मत्स्य की बलि देते हैं । भृश के लिए दही व भात की बलि देते हैं । नैऋत्य ऋषि को तिल युक्त उबला चावल देते हैं । तिल और बीज दौवारिक को बलि देते हैं । सुग्रीव को मोदक बलि देते हैं । पुष्पदन्त को पुष्प व जल की बलि देते हैं ।

अन्य सभी देवताओं की बलि का भी विधान इस प्रकार है ।

श्लोक - पुष्प तोयं बलिं दत्त्वा ऋधातुं पायसान्नं तु वारुणेऽर्णम् ॥ १९ ॥  
 असुरस्य बलिं ऋलीं रक्तं शोशेऽपस्यं तिलतण्डुलम् ।  
 रोगस्य शुष्कमत्स्यं स्याद्वरिदौदनं मारुतः ॥ २० ॥  
 नागस्यैव बलिं लाजं ऋलिर्लाजा धान्यचूर्णं हि मुख्यके ऋमौख्यकः  
 गुडौदनं च भल्लाटे ऋभल्लाटः ऋक्षीरान्नं तु श्लाधराः ऋशाश्वधरः  
 मृगे ऋगस्यं शुष्कमांसं तं ऋतुं मोदकं देवमन्तरे ऋदेवान्तरस्यं  
 तिलपुष्पं बलि दत्त्वा उ ऋदद्यादुः दितस्य फलं भवेत् ।  
 दुग्धैदनमाज्यं चैव भवेन्मत्स्यं ऋस्थोः बलिं तं ऋलिस्तः तः ।  
 सवित्रे वाम्थाः वाथ धाः स्यं च स ऋसाः वित्रे कर्तं ऋगुडः तोयकम्  
 बन्धं ऋसर्वं मेतत् स ऋचः बलिन्द्रे ऋबलिमिन्द्रायः ऋमुद्रफले ऋलमिः  
 ऋन्द्रराजके ऋकायः  
 मार्गे रुद्रबलि दत्त्वा ऋधान्मां ऋसं रुद्रजये ऋयायः तथा-24-।

अर्थात्-

वरुण के लिए खीर की बलि देते हैं । असुर के लिए रक्त देते हैं । शोश के लिए तिल व चावल बलि देते हैं । रोग के लिए सूखी मत्स्य की बलि देते हैं ।







मारुत के लिए हल्दी व भात की बलि देते हैं । भुजे हुए धान्य  
 § लिलीजा § नाग के लिए बलि देते हैं । चावल § धान्य चूर्ण § "मुख्य" के लिये  
 बलि देते हैं । भल्लाट के लिए गुड़ के शीरे के साथ उबले चावल देते हैं । सोम  
 को दूध के साथ उबले चावल की बलि देते हैं । मृग को सूखा मांस देते हैं ।  
 अन्य देवता हेतु § अदिति § मोदक देते हैं । उदित के लिए तिल, पुष्प व फल  
 देते हैं । सवित्र के लिए गुड़ व व जल की बलि देते हैं, इन्द्रजय के लिए मुद्गा  
 की बलि देते हैं । रुद्र के लिए उड़द § मांस § की बलि देते हैं । रुद्र जय के लिए  
 मांस की बलि देते हैं ।

अन्य देवताओं की बलि -

श्लोक -

शुद्धान्नमापवत्स्थाश § स्थाय § च कुमंदं मुद्रौदनम् ।

अपवद्भलिंमिति प्रोक्तं § लिरित्युक्तो § न पदा § दे § बलिं  
 इहो § लिरुच्यते ।

अजशङ्खस्य § ह्यस्योः § मांसं च मृगमांसं तथैव च ।

रक्तमिश्रं बलि दत्त्वा § धातु § पापराक्षसस्ये § स्थाइ § ति स्मृतम् ।

पूतनायै तिलं पिष्टं विदार्यै लवणाशनम् ।

चर क्रियै § चरक्यै § मुद्रसारं च स § ओ § वं तु बलिरिष्यते ॥ 27 ॥

स्वं तु पूजयेदेवान् ग्राम्ययेद्र § ग्रामस्य र § क्षणार्थकम् ।

ब्रह्माया § दिरा § दावपवश्चेति चतुर्देवपदे स्थितम् § तः § ॥ 28 ॥

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 8, श्लोक संख्या - 25 से 28







अर्थात् -

आप वत्स के लिए शुद्ध अन्न की बलि देते हैं । अप वत्स के लिए कुमुद, सफेद कमल, भात और मुद्गा के बीज की बलि है ।

अब बाह्य भाग के धीशो की बलि बताई गई है ।

पाप राक्षसी के लिए बकरे का मांस, शंख व हरिण का मांस, रक्त के साथ बलि दिया जाता है । पूतना के लिए तिल पिष्टी देते हैं ।

नमक विदारी के लिए देते हैं । चरकी के लिए मुद्गा के बीज की बलि देते हैं ।

इस प्रकार से समस्त देवताओं की बलि देते हैं ।

श्लोक -

अन्याश्च देवताः सर्वे ऽर्वाः ऽ पदबाधये स्थिताः सदा ।

इह ग्रामस्य राक्षार्थं सुप्रसन्ना भवन्तु ते ॥ 29 ॥

इति मन्त्रं समुच्चार्य प्रार्थयेद्वलिदेवताः ।

बलिकर्मविधाने तु स्थपतिः स्वं शिवं स्मरेत् ॥ 30 ॥

किमर्थमेतत् ऽदः सुराणां ऽ रः भूतप्रेतोपशान्तये ।

अकृत्वा बलिकर्मन्तु ऽर्म तु विन्यस्तं समचावयम् ऽ च समुच्यम्

विन ऽ ना ऽ श्याति ऽ ते तदा भूमिः राक्षसैरतिदारुणैः ।

तद्बोधोपगमार्थं तु बलिकर्म समाचरेत् ॥ 32 ॥

उक्तं मार्गं बलिः कर्म कुर्वतोऽ ग्रामशम्भुनिलयादिभिः सदा ।

पुष्टिः तुष्टिरपि शान्तिर्मगलं सर्वदा भवति कर्तुमक्तिः ॥ 33 ॥

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 8 श्लोक संख्या 29 से 33







इस प्रकार से देवताओं का पूजन ग्राम आदि हेतु करना चाहिए ।  
 ब्रह्मा से प्रारम्भ करके आपवत्स तक के देवता उनके निर्धारित आन्तरिक पदों  
 में बताये गये हैं । और अन्य देवता इस भाग के बाहर बताये गये हैं । ग्राम की  
 सुरक्षा के लिए इसको स्वीकार करना चाहिए । अर्थात् इसका पालन करना चाहिए,  
 मंत्र के उच्चारण तथा प्रार्थना करके बलि को चढ़ाना चाहिए । इसके बाद स्थापति  
 को अपने स्वयं के कल्याण हेतु शिव का स्मरण करना चाहिए । यह देवताओं,  
 जिनन तथा प्रेतों को शान्त करने के लिए है ।

यदि पूरा विन्यास बलि कर्म विधान के बिना होता है, तो  
 वह स्थान प्रेतों व राक्षसों द्वारा नष्ट हो जाता है, इसीलिए, इस कष्ट से  
 बचने के लिए बलि कर्म अवश्य करना चाहिए । यदि ग्राम का स्थापक बलि  
 कार्य करता है, शिव के या अन्य देवों का मंदिर आदि में, तो वहाँ हमेशा  
 समृद्धि कल्याण, शान्ति व संतोष होता है तथा ग्राम के मुखिया की सेवा होती  
 है ।

इस प्रकार से बलिका विधान हमारे शास्त्रों में निश्चित किया  
 गया है । इस प्रकार से उपर्युक्त बलि कर्म विधानम् से यह स्पष्ट हुआ कि  
 प्रत्येक देवता को किस विशेष द्रव्य की बलि चढ़ाते हैं । जिसके द्वारा यह  
 स्पष्ट होता है कि कौन सा देवता किस विशेष पदार्थ से संतुष्ट या तृप्त होता  
 है । जो यह तथ्य दर्शाता है कि पदार्थ-विशेष का गुण-विशेष, देवता-विशेष को  
 तृप्त करने में सक्षम है । जिसको वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने पर यह तथ्य  
 स्पष्ट होता है कि स्थिति विशेष में देवता विशेष का आवाहन तथा तुष्टि  
 आदि पदार्थों के माध्यम से करनी हो तो कौन सा पदार्थ किस देवता के लिए  
 उपयुक्त है ।







इस प्रकार से देवताओं का पूजन ग्राम आदि हेतु करना चाहिए ।  
 ब्रह्मा से प्रारम्भ करके आपवत्स तक के देवता उनके निर्धारित आन्तरिक पदों  
 में बताये गये हैं । और अन्य देवता इस भाग के बाहर बताये गये हैं । ग्राम की  
 सुरक्षा के लिए इसको स्वीकार करना चाहिए । अर्थात् इसका पालन करना चाहिए,  
 मंत्र के उच्चारण तथा प्रार्थना करके बलि को चढ़ाना चाहिए । इसके बाद स्थापति  
 को अपने स्वयं के कल्याण हेतु शिव का स्मरण करना चाहिए । यह देवताओं,  
 जिनन तथा प्रेतों को शान्त करने के लिए है ।

यदि पूरा विन्यास बलि कर्म विधान के बिना होता है, तो  
 वह स्थान प्रेतों व राक्षसों द्वारा नष्ट हो जाता है, इसीलिए, इस कष्ट से  
 बचने के लिए बलि कर्म अवश्य करना चाहिए । यदि ग्राम का स्थापक बलि  
 कार्य करता है, शिव के या अन्य देवों का मंदिर आदि में, तो वहाँ हमेशा  
 समृद्धि कल्याण, शान्ति व संतोष होता है तथा ग्राम के मुखिया की सेवा होती  
 है ।

इस प्रकार से बलिका विधान हमारे शास्त्रों में निश्चित किया  
 गया है । इस प्रकार से उपर्युक्त बलि कर्म विधानम् से यह स्पष्ट हुआ कि  
 प्रत्येक देवता को किस विशेष द्रव्य की बलि चढ़ाते हैं । जिसके द्वारा यह  
 स्पष्ट होता है कि कौन सा देवता किस विशेष पदार्थ से संतुष्ट या तृप्त होता  
 है । जो यह तथ्य दर्शाता है कि पदार्थ-विशेष का गुण-विशेष, देवता-विशेष को  
 तृप्त करने में सक्षम है । जिसको वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने पर यह तथ्य  
 स्पष्ट होता है कि स्थिति विशेष में देवता विशेष का आवाहन तथा तुष्टि  
 आदि पदार्थों के माध्यम से करनी हो तो कौन सा पदार्थ किस देवता के लिए  
 उपयुक्त है ।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



इसी प्रकार से गर्भ विन्यास में भी यह सत्य उद्घाटित होता है कि किस दिशा के लिए कौन सी मृदा, जड़ आदि प्रयोग करनी चाहिए, जो उस दिशा विशेष की प्रकृतियों को ही दर्शाती हैं । जैसा कि "मानसार" नामक ग्रन्थ के गर्भ विन्यास नामक अध्याय में विस्तृत रूप से वर्णित है, जो निम्नानुसार है :-

श्लोक -

तदूर्ध्वं मध्यदेशे तु पीनकं तं षष्ठमकन्दं विनिक्षिपेत् ।  
 इन्द्रे चोत्पलकन्दं तु याम्ये कौमुदकन्दम् ॥ ७ ॥  
 पश्चिमे न्यस्य सौगन्धिं काकोलीं कलीं तु चोत्तरे ।  
 तस्योपरि विन्यसेदष्ट धान्यं यथाक्रमम् ॥ ८ ॥

पूर्व	-	नीलकमल की जड़
दक्षिण में	-	कौमुदकन्द
पश्चिम में	-	सौगन्धी घास
उत्तर में	-	काकली
मध्य में	-	सफेद कमल की जड़

---

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - १२, श्लोक संख्या - ७, ८,



अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।  
 अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।  
 अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।  
 अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।  
 अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।  
 अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।

- अथ

१. अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।
२. अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।
३. अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।
४. अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।
५. अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः	-	अथ
अथ चतुर्विंशोऽध्यायः	-	अथ
अथ चतुर्विंशोऽध्यायः	-	अथ
अथ चतुर्विंशोऽध्यायः	-	अथ
अथ चतुर्विंशोऽध्यायः	-	अथ

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।



धान्य -

इसी प्रकार से आठ दिशाओं के आधार पर आठ धान्यों का भी वर्णन इस तरह से मिलता है ।

श्लोक -

शालिमीशानके न्यस्य ब्रीहिं प्राग्दिशि विन्यसेत् ।

कोद्रवं चग्निकोणे तु कङ्गुं याम्ये तु विन्यसेत् ॥ ९ ॥

मुद्गं नैऋत्यकोणे तु मा प्रत्यग्विनिक्षिपेत् ।

कुलं लं त्यं वामं युं कोणे तु तिलं विन्यस्य चोत्तरे । १० ।

अर्थात् -

इस श्लोक का अर्थ निम्न स्पष्ट होता है :

दिशा =====	-	धान्य =====
ईशान	-	शालि
पूर्व	-	ब्रीहि
अग्नि	-	कोद्रव
दक्षिण	-	कङ्गु
नैऋत्य	-	मुद्गा
पश्चिम	-	माश
वायव्य	-	कुलथा
उत्तर	-	तिल







धातु -

विभिन्न दिशाओं के लिए विभिन्न धातु का वर्णन भी मिलता है, जो इस प्रकार है :-

श्लोक -

स्वर्णेन स्वस्तिकं ऽस्ति च ऽ कुर्याद्दृष्ट्वां चायसेन तु ॥ 38 ॥

लक्ष्मीं ताम्रेण कुर्यात् दर्पणं रजतेन तु ।

स्वस्तिकं चन्द्रकोष्ठे तु चतुः ऽत्वारं ऽ विन्यस्य क्रमात् । 39 ।

अर्थात्-

दिशा =====	धातु =====	आकृति =====
पूर्व	स्वर्ण	स्वास्तिक
दक्षिण	लोहा	बैल
पश्चिम	तांबा	लक्ष्मी
उत्तर	चौदी	दर्पण

खनिज व रत्न -

जिस तरह से धातु आदि का वर्णन है । ठीक उसी प्रकार से हमारे शास्त्रों में खनिज तथा रत्नों का भी दिशाओं और देवता के अनुसार वर्णन मिलता है, जो इस प्रकार से है, जिनका वर्णन ज्योतिष में मिलता है । जिससे इनके गुण स्पष्ट होते हैं ।

---

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 12, श्लोक संख्या 38-39



- ७७

तस्मात् त्रि लोकाः त्रि गणः त्रिधा भवन्ति । त्रिधा भवन्ति ।

- १. त्रिधा भवन्ति ।

- ७८

॥ ७८ ॥ त्रि लोकाः त्रि गणः त्रिधा भवन्ति । त्रिधा भवन्ति ।

। त्रि लोकाः त्रि गणः त्रिधा भवन्ति । त्रिधा भवन्ति ।

। ७८ । त्रि लोकाः त्रि गणः त्रिधा भवन्ति । त्रिधा भवन्ति ।

- ७९

लोकाः	गणः	त्रिधा
७८	७८	७८
७८	७८	७८
७८	७८	७८
७८	७८	७८
७८	७८	७८

- ८०

॥ ८० ॥ त्रि लोकाः त्रि गणः त्रिधा भवन्ति । त्रिधा भवन्ति ।

त्रि लोकाः त्रि गणः त्रिधा भवन्ति । त्रिधा भवन्ति ।

। ८० । त्रि लोकाः त्रि गणः त्रिधा भवन्ति । त्रिधा भवन्ति ।

८०-८१ त्रि लोकाः त्रि गणः त्रिधा भवन्ति । त्रिधा भवन्ति ।



श्लोक -

जयन्ते कोष्ठके चैव जातिहिङ्गुल्य ॥१॥ निक्षिपेत् ।

हरितालं भृशं वासे वितथ च मनः शिला ॥लाम् ॥ 40 ॥

विन्यसेद्भृशराजस्य कोष्ठके मक्षिं निक्षिपेत् ।

सुग्रीवस्य तु कोष्ठे तु राजावन्तं ॥१॥ तु निक्षिपेत् ॥ 41 ॥

शोषे गैरिकं न्यस्य मुख्यके चास्य ॥ अज ॥ निक्षिपेत् ।

अदिते ॥तौ॥ गन्धकं न्यस्य मधु ॥पय॥ रागं तु मध्यमे ॥ 42 ॥

ततश्चाप्य ॥१॥ प्रबालं तु साविन्द्रे ॥त्रे॥ पुष्परागकम् ।

वि वस्वते ॥ति॥ वैसू ॥दु॥ र्य वज्रमिन्द्रस्य कोष्ठके ॥ 43 ॥

मित्रकस्येन्द्रनीलं स्यात्तथा रुद्रस्य कोष्ठके ।

महानीलं विनिक्षिप्य मरकतं ॥कत॥ तु भूधरे ॥ 44 ॥

मुक्ता ॥म॥ पवत्स्यवासेषु विन्यसेत् यथाक्रमम् ।

विष्णु कान्ताभि ॥चक्रमीश॥ कोष्ठे तु त्रिशूलं येन्द्रकोष्ठके ॥ 45 ॥

पद	-	खुनिज
जयन्त	-	जाति हिङ्गला
भृश	-	हरिताल
वितथ	-	मनः शिला
भृशराज	-	मक्षी

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - 12, श्लोक संख्या 40 से 45 तक



१. प्रसिद्धिनी विमल प्रकाशिताय नमः

॥ ७५ ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ७५ ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ७५ ॥

१. प्रसिद्धिनी विमल प्रकाशिताय नमः

॥ ७६ ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ७६ ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ७६ ॥

१. प्रसिद्धिनी विमल प्रकाशिताय नमः

॥ ७७ ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ७७ ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ७७ ॥

१. प्रसिद्धिनी विमल प्रकाशिताय नमः

॥ ७८ ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ७८ ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ७८ ॥

१. प्रसिद्धिनी विमल प्रकाशिताय नमः

॥ ७९ ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ७९ ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ७९ ॥

१. प्रसिद्धिनी विमल प्रकाशिताय नमः

॥ ८० ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ८० ॥ प्रसिद्धिनी तस्मै नमः ॥ ८० ॥

प्रसिद्धिनी

-

७५

प्रसिद्धिनी

-

७६

प्रसिद्धिनी

-

७७

प्रसिद्धिनी

-

७८

प्रसिद्धिनी

-

७९



पद	-	खनिज
===		=====

सुग्रीव	-	राजावंत
---------	---	---------

शोष	-	गैरिक
-----	---	-------

मुख्य	-	अंजन
-------	---	------

अदिति	-	गंधक
-------	---	------

रत्न  
===

पद	-	रत्न
==		===

अपवत्स	-	मुक्ता
--------	---	--------

अर्थक	-	प्रवाल
-------	---	--------

सवित्र	-	पुष्पराग
--------	---	----------

विवस्वत	-	दैर्घ्यमणि
---------	---	------------

इन्द्र	-	वज्र
--------	---	------

मित्रक	-	इन्द्रनील
--------	---	-----------

रुद्र	-	महानील
-------	---	--------

भूधर	-	मरकत
------	---	------

ब्रम्हा	-	पद्मराग
---------	---	---------

चिन्ह -

चिन्हों का भी वर्णन दिशाओं और देवता के अनुसार मिलता

है, जो इस प्रकार है :-



मन्त्र	-	३०
मन्त्र	-	३३
मन्त्र	-	३४
मन्त्र	-	३५
मन्त्र	-	३६
मन्त्र	-	३७
मन्त्र	-	३८
मन्त्र	-	३९
मन्त्र	-	४०
मन्त्र	-	४१
मन्त्र	-	४२
मन्त्र	-	४३
मन्त्र	-	४४
मन्त्र	-	४५
मन्त्र	-	४६
मन्त्र	-	४७
मन्त्र	-	४८
मन्त्र	-	४९
मन्त्र	-	५०
मन्त्र	-	५१
मन्त्र	-	५२
मन्त्र	-	५३
मन्त्र	-	५४
मन्त्र	-	५५
मन्त्र	-	५६
मन्त्र	-	५७
मन्त्र	-	५८
मन्त्र	-	५९
मन्त्र	-	६०
मन्त्र	-	६१
मन्त्र	-	६२
मन्त्र	-	६३
मन्त्र	-	६४
मन्त्र	-	६५
मन्त्र	-	६६
मन्त्र	-	६७
मन्त्र	-	६८
मन्त्र	-	६९
मन्त्र	-	७०
मन्त्र	-	७१
मन्त्र	-	७२
मन्त्र	-	७३
मन्त्र	-	७४
मन्त्र	-	७५
मन्त्र	-	७६
मन्त्र	-	७७
मन्त्र	-	७८
मन्त्र	-	७९
मन्त्र	-	८०
मन्त्र	-	८१
मन्त्र	-	८२
मन्त्र	-	८३
मन्त्र	-	८४
मन्त्र	-	८५
मन्त्र	-	८६
मन्त्र	-	८७
मन्त्र	-	८८
मन्त्र	-	८९
मन्त्र	-	९०
मन्त्र	-	९१
मन्त्र	-	९२
मन्त्र	-	९३
मन्त्र	-	९४
मन्त्र	-	९५
मन्त्र	-	९६
मन्त्र	-	९७
मन्त्र	-	९८
मन्त्र	-	९९
मन्त्र	-	१००

- अन्तिम

मन्त्रों के अन्तिम अक्षरों के विचारों से ही यह किताब

लिखी गई है।



श्लोक -

विष्णुकान्ताग्निं चक्रमीशं कोष्ठे तु त्रिशूलं चन्द्रकोष्ठके ॥ ४५ ॥  
श्रीदेव्या वीमं ग्निकोष्ठे तु श्रयन्ते न्तं निहयमं कोष्ठके ।-।

अर्थात् -

इस श्लोक के अन्तर्गत जो चिन्ह बताये गये हैं वो निम्नलिखित हैं -

	चिन्ह =====	
दिशा =====	-	चिन्ह =====
ईशान	-	विष्णु चक्र
पूर्व	-	त्रिशूल
दक्षिण	-	श्रयन्त

औषधि आदि -

दिशाओं के अनुसार औषधियों, जड़ी बूटियों आदि का भी वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता है, कि किस दिशा के लिए कौन सी औषधि उपयुक्त है जो निम्नानुसार है, इन औषधियों के गुणों का वर्णन वैदिक वाङ्मय के आयुर्वेद में सविस्तार मिलता है ।

श्लोक -

दूर्वा नैर्ऋत्यकोष्ठे तु भृङ्गि वारुणकोष्ठके ॥ ४६ ॥

अपा पं मार्गं च वायव्ये चैकपत्राम्बुजो जमुत्तरे ।

विन्यसेच्चोषधिं चाष्टौ मृणालं महेन्द्रं मेवं क्रमात्ततः ॥ ४७ ॥

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - १२, श्लोक संख्या ४५<sup>१/२</sup> से ६६ तक



- अथ

॥ अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥  
॥ अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥

- अथ

- अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥

अथ	अथ	अथ
अथ	-	अथ
अथ	-	अथ
अथ	-	अथ
अथ	-	अथ

अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥

॥ अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥  
॥ अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥  
॥ अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥  
॥ अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥

- अथ

॥ अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥  
॥ अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥  
॥ अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥

॥ अथ विष्णुसंहितायां १०० अध्यायः ॥



## औषधि

=====

दिशा	-	औषधि
नैऋत्य	-	दूर्वा
वरुण	-	भृङ्गी
वायु	-	अपामार्ग
उत्तर	-	एक वर्णी कमल

श्लोक -

जयन्ते ऽपर्जन्ये ऽ चन्दनं क्षिप्य चान्तस्थोऽगुरुं तथा ।  
विधत्ते ऽपूष्णि तृ ऽ क्षिप्य कर्पूरं मृगे ऽशे ऽ शैल विनिक्षिपेत् ॥ 48 ॥  
सुगीवे च ऽदौवारिके ऽ लवङ्गं स्याद्रोगे लम्बायतं ऽस्लालता ऽ क्षिपेत् ।  
मुख्ये ऽनागे ऽ जातिफलं क्षिप्य उ ऽचो ऽदिते कोलकं न्यसेत् ॥ 49 ॥

अर्थात्-

इस श्लोक में वर्णित औषधि आदि जड़ी बूटियों की दिशाओं एवं देवताओं के पद के अनुसार इस प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं ।

## औषधि/वनस्पति

=====

दिशा	-	औषधि/वनस्पति
उत्तर	-	एक वर्णीय कमल
वायु	-	अपामार्ग

ग्रन्थ - गानसार, अध्याय - 12, श्लोक संख्या 48-49



ਪੰਨਾ	-	185
ਪੰਨਾ	-	186
ਪੰਨਾ	-	187
ਪੰਨਾ	-	188
ਪੰਨਾ	-	189

- 185 -

1. ਪੰਨਾ 185 ਵਿਚ ਪੰਨਾ 186 ਦੇ ਅੰਤ ਵਿਚ  
 2. ਪੰਨਾ 186 ਵਿਚ ਪੰਨਾ 187 ਦੇ ਅੰਤ ਵਿਚ  
 3. ਪੰਨਾ 187 ਵਿਚ ਪੰਨਾ 188 ਦੇ ਅੰਤ ਵਿਚ  
 4. ਪੰਨਾ 188 ਵਿਚ ਪੰਨਾ 189 ਦੇ ਅੰਤ ਵਿਚ

- 186 -

ਪੰਨਾ 186 ਵਿਚ ਪੰਨਾ 187 ਦੇ ਅੰਤ ਵਿਚ

1. ਪੰਨਾ 187 ਵਿਚ ਪੰਨਾ 188 ਦੇ ਅੰਤ ਵਿਚ

ਪੰਨਾ	-	187
ਪੰਨਾ	-	188
ਪੰਨਾ	-	189



### औषधि/वनस्पति

दिशा =====	-	औषधि =====
पश्चिम	-	भृङ्गी
नैऋत्य	-	दूर्वा
पूर्य्य ऋषदः	-	चन्दन
अंतरिक्ष ऋषदः	-	अगुरु
पूषान	-	कपूर
भृष	-	शैल
दौवारिक	-	लवण
रोग	-	इला
नाग	-	जातिफल
उदित	-	कोलक

इस प्रकार से विभिन्न दिशाओं एवं देवताओं के पदों के लिए उपर्युक्त औषधियों आदि का वर्णन है ।

आकृतियाँ :-

किसी भी कार्य में किसी आकृति विशेष का विशेष महत्व होता है, इसी प्रकार से यहाँ पर भी विभिन्न दिशाओं एवं उप दिशाओं के लिए विशेष आकृति बताई गई हैं, जो इस प्रकार हैं :-







श्लोक -

कपालं च त्रिशूलं च खट्वाङ्गं खण्डमेव षपरशुं च ।

वृषभं चैव साम्बं पिनाकं च हरिणं शार्ङ्गं मेव च ॥ 50 ॥

एवं चष्टविधं रूपं तौ सा वर्णेन प्रकल्पयेत् ।

इन्द्रादिकोष्ठेषु कपालादि दिं न्यसेत्क्रमात् ॥ 51 ॥

आकृतियों

=====

पूर्व	-	कपाल
अग्नि	-	त्रिशूल
दक्षिण	-	खट्वाङ्ग
नैऋत्य	-	परशु
पश्चिम	-	वृषभ
वायु	-	पिनाक
उत्तर	-	हरिण
ईशान	-	भृङ्ग

अक्षर -

विभिन्न दिशाओं के अनुसार अक्षरों का भी वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता है, जो इस प्रकार है :-

-----

ग्रन्थ - मानसार अध्याय - 12, श्लोक संख्या - 50, 51







इष्टयाविधि ॥ इष्टविधिना ॥ वासादौ स्थापयेत्प्रथमेष्टकम् ।

प्रागिष्टके सकारं तु दक्षिणे तु षकारकम् ॥ १०३ ॥

पश्चिम तु सकारं स्याद्योत्तरे तु वः हः कारकम् ।

मध्ये तु प्रणवं प्रोक्तं विन्यसेन्नाक्षरं क्रमात् ॥ १०४ ॥

अर्थात्-

दिशानुसार अक्षरों का उपयोग किया गया है, जो निम्नलिखित

है :-

अक्षर  
===

पूर्व दिशा की ईंट पर	-	श
दक्षिण की ईंट पर	-	ब
पश्चिम की ईंट पर	-	स
उत्तर की ईंट पर	-	ह
केन्द्र की ईंट पर	-	ॐ

विभिन्न वर्णों ॥ व्यवसाय नुसार ॥ कैर्गर्विन्धास के लिए ॥ नींव ॥ सांकेतिक तत्त्व

निम्नानुसार वर्णित हैं :-

श्लोक -

देवर्गमिति प्रोक्तं नरर्गमिहोच्यते ।

द्विजातीनां च वर्णानां गृहर्गं यथाक्रमम् ॥ ७७ ॥

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय - १२, श्लोक संख्या १०३-१०४ एवं ७७







श्लोक -

पूर्वद्रव्यं तु सर्वेषु तत्तच्चिन्हं च संयुतम् ।

चक्रं च कण्डलं ॥कमण्डलुं॥ दण्डं यज्ञसूत्रं च हेमकम् ॥ 78 ॥

ओङ्कार ॥ रं॥ निर्मित हेम ॥ म्ना॥ तच्चतुर्दिशि मध्यमे ।

एवं ब्राम्हणगर्भं स्याद्भूपतीनां च वक्ष्यते ॥ 79 ॥

रवा ॥ ग॥ जं खङ्गं च छत्रं च चामरं च चतुष्टयम् ।

हेमनिर्मितसर्वं च चतुर्दिक्षु विनिक्षिपेत् ॥ 80 ॥

तुलां हेमेन ॥ हेम्ना च॥ निर्माय मध्यकोष्ठे तु विन्यसेत् ।

एवं तु वैश्यगर्भं स्यादनुक्तं शास्त्रमार्गवत् ॥ 81 ॥

लाङ्गलं च युगं ॥ चैव॥ स्वर्णेन मध्यमं ॥ शूद्रे च॥ न्यसेत् ।

ब्रम्हारूपं द्विजातीनां भूपानां चेन्द्ररूपकम् ॥ 82 ॥

विशां वैश्रवणं रूपं शूद्राणां नररूपकम् ।

एवं तु प्रतिमं प्रोक्तमेतद्दर्भोपरि न्यसेत् ॥ 83 ॥

गृहगर्भमिति प्रोक्तं ग्रामगर्भमिहोच्यते । - ।

अर्थात् -

द्विज - समस्त सामग्री गर्भं विन्यासनुसार व चक्र, कलश,

शिव परिवार व स्पर्श का जनेरु क्रमशः चारों दिशाओं तथा केन्द्र में स्वर्ण

का ऊँ रखते हैं ।

क्षत्रिय - गज, तलवार, छत्र, चैवर, स्वर्ण का क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम

उत्तर में स्थापित करते हैं ।

ग्रन्थ-मानसार, अध्याय - 12, श्लोक संख्या - 78 से 83-।



॥ १०८ ॥ ...  
॥ १०९ ॥ ...  
॥ ११० ॥ ...  
॥ १११ ॥ ...  
॥ ११२ ॥ ...  
॥ ११३ ॥ ...  
॥ ११४ ॥ ...  
॥ ११५ ॥ ...  
॥ ११६ ॥ ...  
॥ ११७ ॥ ...  
॥ ११८ ॥ ...  
॥ ११९ ॥ ...  
॥ १२० ॥ ...

- ७१२ -

॥ १२१ ॥ ...  
॥ १२२ ॥ ...  
॥ १२३ ॥ ...  
॥ १२४ ॥ ...  
॥ १२५ ॥ ...  
॥ १२६ ॥ ...  
॥ १२७ ॥ ...  
॥ १२८ ॥ ...  
॥ १२९ ॥ ...  
॥ १३० ॥ ...

- ७१३ -

॥ १३१ ॥ ...  
॥ १३२ ॥ ...  
॥ १३३ ॥ ...  
॥ १३४ ॥ ...  
॥ १३५ ॥ ...  
॥ १३६ ॥ ...  
॥ १३७ ॥ ...  
॥ १३८ ॥ ...  
॥ १३९ ॥ ...  
॥ १४० ॥ ...



स्वर्ण का तराजू केन्द्र में शेष गर्भ विन्यासानुसार ।

शूद्र -

स्वर्ण का हल व बैल बनाकर केन्द्र में रखते हैं ।

नींव के तल पर विभिन्न आकृतियों निम्नलिखित रूप से बनाते हैं-

ब्राम्हणों में	-	ब्रम्हा की आकृति
क्षत्रियों में	-	इन्द्र की आकृति
वैश्यों में	-	कुबेर की आकृति
शूद्रों में	-	मानव की आकृति बनाते हैं ।

इसी प्रकार से मंदिर के लिंग, उपपीठ व गृह के लिए परशायिका पद विन्यास करके निम्नानुसार विन्यास करते हैं :-

श्लोक -

पंचविंशतिकोष्ठे षष्ठं वा - नवकोष्ठमथापि वा ॥ 88 ॥

शेषं तु पूर्ववत्कुर्याद्द्रव्यादीनां षष्ठं तु पूर्ववत् ।

इन्द्रे राजतदन्ती षष्ठं नित्तनं बाग्नौ मेषं च वायसा ॥ 89 ॥

मृत्युपुरुषा षष्ठं महिषं याम्ये नरं रं वैश्वैः कतं तं नैऋते ।

पश्चिमे राजतं ग्राहं हं वायव्ये मृगं चायसम् ॥ 90 ॥

एतस्ततस्तु षष्ठं ऐरावतं तु सौम्ये तु राजता तं बृष्मे भूमौ शके ।

एवं प्रक्षिप्य वैश्वस्य षष्ठः पूर्वोक्तैर्द्रव्यैः सह ॥ 91 ॥

ग्रन्थ - मानसार, अध्याय संख्या - 12, श्लोक - 88 से 91



१. गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु

२. च मेरु च पर्वतं पर्वतं च मेरु च पर्वतं च मेरु

- ३३७

३. गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु

गङ्गासङ्गमस्थली

च मेरु

पर्वतं च पर्वतं

च मेरु

पर्वतं च पर्वतं

च मेरु

४. गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु

च मेरु

गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु

५. गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु

- ३३८

६. गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु

७. गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु

८. गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु

९. गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु

१०. गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु

११. गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु

१२. गङ्गासङ्गमस्थली मेरु पर्वतं च पर्वतं पर्वतं च मेरु



अर्थात्-	पूर्व में-	-	चौदी का शाही गज
	अग्नि में	-	लौह का भेड़
	दक्षिण में	-	भैंस मिट्टी में
	नैऋति में	-	बालू की मानवाकृति
	पश्चिम में	-	चौदी का दरयायी घोड़ा
	वायु में	-	लौह में मृग
	उत्तर में	-	चौदी का सरावत
	ईशान में	-	चौदी का कृष

जलाशयो के लिए-

जलाशयो में भी दिशाओं और उनसे सम्बद्ध वस्तुओं का वर्णन इस प्रकार से हो जाता है -

श्लोक -

वापीकूपतटाकेषु ऽवा॥ मध्ये गर्भं नराञ्जलिम् ॥ १२ ॥

मण्डूकं पाचञ्जन्यं च मत्स्यं कूर्मं च राजतम् ।

इन्द्रादिषु चतुर्दिषु विन्यसेत् यथाक्रमम् ॥ १३ ॥

मध्ये सुवर्णाकुलीरं शेषं प्रागुत्तवन्नयेत् ।

अर्थात् -

पूर्व में	-	मैदक चौदी का
दक्षिण में	-	शेख चौदी का
पश्चिम में	-	मछली चौदी की
उत्तर में	-	कछुआचौदी में

ग्रन्थ - मानसार , अध्याय - १२, श्लोक संख्या १२-१३-१



ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ	- ਗੁਰੂ
ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ	- ਗੁਰੂ
ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ	- ਗੁਰੂ
ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ	- ਗੁਰੂ
ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ	- ਗੁਰੂ
ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ	- ਗੁਰੂ
ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ	- ਗੁਰੂ
ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ	- ਗੁਰੂ

- ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ ਹੋਵੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

- ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

- ਗੁਰੂ

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ ਹੋਵੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ ਹੋਵੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ ਹੋਵੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ ਹੋਵੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

- ਗੁਰੂ

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ
ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ
ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ
ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	-	ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ



उपर्युक्त तथ्य यह दर्शाते हैं कि किस प्रकार स्थापत्य वेद द्वारा निर्माण के लिए उसके मूलधार वास्तु पुरुष मण्डल में वर्णित देवता जो उस स्थान विशेष के गुण को दर्शाते हैं, तथा उनका किस द्रव्य से सम्बन्ध है।

यह एक गूढ़ रहस्य है जो कि स्थापत्य वेद के प्रायोगिक क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जो कि देवताओं की संज्ञाओं के माध्यम से स्थान विशेष के गुण-धर्मों की व्याख्या करता है। साथ ही उससे सम्बंधित तत्वों जो उस देवता को त्रुट करने के लिए प्रयुक्त होते हैं, उनका विश्लेषण करने पर यही तथ्य स्पष्ट होता है, कि यदि किसी स्थान विशेष पर देवता विशेष के गुण उत्पन्न करने हों, तो उसके लिए वर्णित तथ्यों का प्रयोग उस गुण विशेष को उत्पन्न करने में काम हो सकता है।

जैसे यदि हम उत्तर दिशा के देवता शोम के गुणों को देखें तो उसका शीतलता का गुण उससे संबंधित तत्व अर्थात् जल को व्यक्त करता है। तथा ईशान दिशा जिस तरह वास्तु पुरुष का शिर होता है, वह दिशा ग्रहों के अनुसार गुरू अर्थात् बृहस्पति की होती है। और शिर मेधा तथा मस्तिष्क का धोतक है। तथा पूर्व जो कि सूर्य ग्रह को दर्शाती है, वहाँ के लिए धातु स्वर्ण कही गई है।

इस प्रकार ब्रम्हा से शैल अर्थात् प्रस्तर तथा विभिन्न वनस्पतियों आदि अनेक स्थावर तत्व अपने गुण विशेषों के कारण मनुष्य के जीवन में आवश्यक किसी न किसी ऊर्जा, रसायन, अथवा पदार्थ को ही धारण किए रहते हैं।







जिन ऊर्जाओं का सांकेतिक अभिव्यंजन हमें वास्तु पुरुष मण्डल के विभिन्न देवताओं अथवा गर्भन्यास आदि के समय उसमें प्रयुक्त होने वाले विभिन्न द्रव्य, रत्न, खनिज, औषधि, आकृति-ओं आदि द्वारा मिलता है ।

जो कि स्वाभाविक रूप से एक आदर्श निर्माण में वहाँ उपस्थित होना चाहिए, यदि किसी कारण वश वास्तु पुरुष मण्डल का वह पद देवता या स्थान दूषित अथवा भंग या पीड़ित हो जाय, तो उससे सम्बंधित उपर्युक्त अनेक तथ्यों का प्रयोग कर उस देवता की ऊर्जा को संतुलित किया जा सकता है ।

और चूँकि वही निर्गुण निराकार अव्यक्त ब्रम्ह जो कि विशुद्ध चेतना है, वही अपने को क्रमशः विभिन्न प्रकार की दैवी श्रृष्टि, मानसी श्रृष्टि, व स्थावर जंगलों की विभिन्नताओं में अपने को प्रकट करती है । अर्थात् वही शुद्ध चेतन स्वरूप अपने को विभिन्न ध्वन्यात्मक प्रभाव आकारों, वर्णों, तथा वनस्पतियों, रत्नों, आदि में अपने को व्यक्त करता है । और चूँकि पूरे वैदिक वांगमय में क्रम से ऋग्वेद से आरंभ करके वेदांग, उपांग, ब्राम्हण, व उपवेदों में उस चेतन सत्ता के विभिन्न रूपों के गुण धर्मों का वर्णन है । तथा उसको मनुष्य किस प्रकार अपने आधि भौतिक, आधि दैविक, तथा आध्यात्मिक विकास के लिए प्रयोग करे, इसका वर्णन है । इस प्रकार स्थापत्य वेद जो कि निर्माण के क्षेत्र का ज्ञान कराता है, उसमें वैदिक वांगमय के अनेक क्षेत्रों का समन्वय स्थापत्य वेद, का चेतना विज्ञान, अर्थात् वैदिक वांगमय से पुष्ट अंतरसंबंध स्थापित करता है ।







इसके पश्चात् इन अन्तर संबंधों का उपयोगात्मक विवेचन करने के लिए स्थापत्य वेद वास्तु विद्या के मूल सिद्धान्तों का वर्णन आवश्यक है, जिनके विपरीत या अन्यथा निर्माण हो जाने पर चेतना विज्ञान - वैदिक वांगमय के अन्य क्षेत्रों यथा = मंत्रों, यज्ञों आदि के द्वारा अथवा वनस्पति, रत्न, आदि के द्वारा उसका शोधन भी सम्भव है। जो कि स्थापत्य वेद और चेतना विज्ञान - वैदिक वांगमय का अत्यन्त घनिष्ट अन्तर्सम्बन्ध दर्शाता है।

स्थापत्य वेद वास्तु शास्त्र के प्रमुख मूल सिद्धान्त -

- 1- भूमि के प्लव सम्बन्धी
- 2- भूमि के आकार सम्बन्धी
- 3- द्वार सम्बन्धी
- 4- आन्तरिक नियोजन सम्बन्धी

उपर्युक्त बिन्दुओं का विवरण इस प्रकार है -

॥१॥

प्लव -

प्लव की स्थिति को एवं उससे होने वाले अनेकों शुभाशुभा

फल को इस श्लोक से स्पष्ट किया जा सकता है :-

श्लोक - पूर्व प्लवे भवेत्लक्ष्मी राग्नेभ्यां शोकमादिशेत् याम्यां याति यम  
द्वारं नैर्ऋत् च महाभयम् ॥ 15 ॥  
नैऋते चा कुलानाशः स्याद्वेके दक्षिणामविशेत् ॥  
पश्चिमे कलहं कुर्याद्विषयां मृत्युमादिशेत् ।  
उत्तरे वंशवृद्धि स्यादीशाने रत्नसञ्चयः ॥ 16 ॥  
दिङ् मूढे कुलनाशः स्याद्वेके दारिद्र्यमादिशेत् ।







अर्थात् -

इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि यदि पूर्व की ओर भूमि की निचान हो तो लक्ष्मी आती है । अग्नि कोण में हो तो शोक, दक्षिण दिशा में हो तो मरण, नैऋत्य दिशा में हो तो महाभय होता है । पश्चिम में प्लव हो तो कलह, वायव्य दिशा में हो तो मृत्यु, और उत्तर में प्लव हो तो वंश की वृद्धि होती है । ईशान दिशा में ढलान हो तो रत्नों का संघय कहा है । जिस भूमि की निचाई दिङ् मूढ़ हो अर्थात् किसी दिशा को न हो तो कुल का नाश और जो टेढ़ी हो तो दरिद्रता कही गई है ।

इसी प्रकार से समराङ्ग ण सूत्रधार भवन निवेश के अन्तर्गत भी भूमि के प्लव एवं उसके फलों को बताया है । जो इस प्रकार से है :-

नैऋत्य, वासुण, याम्य, वायव्य, आग्नेय, इन दिशाओं की ओर जो भूमि निचली होती है वह निन्दित कही गई है । इसी प्रकार मध्य प्लवा अर्थात् बीच में निचली भूमि व्याधि देती है । अरका वही भूमि दरिद्र्य लाती है । वाहिन प्लवा भूमि अग्नि का भय लाती है । दक्षिण - प्लवा मृत्यु लाती है, रक्षाप्लवा रोग लाती है । और पश्चिम प्लवा धान्य और धन का नाश करती है ॥ २ - ३ ॥

मरुत्प्लवा भूमि कलह, प्रवास, और रोग को लाती है । तथा मध्य प्लवा जो भूमि होती है वह सर्वबाश का कारण बनती है ।

§ अध्याय - ३८, गृहदोष निरूपण §







§ 1 §      दण्डाकार भूमि, आयताकार भूमि जिसकी लम्बाई और चौड़ाई अनुपात 2:1 से अधिक होती है, तथा त्रिकोणाकार भूमि में निर्माण होने से अधिकारियों का भय तथा सन्तान की हानि होती है ।

§ 2 §      वृत्ताकार, ध्वनाकार, असमान आकार, गोमुखी आकार, नाहर मुखी आकार तथा अन्य अनियमित आकार की भूमि में निवास या निर्माण होने से अशुभ होता है ।

§ 3 §      उत्तलाकार § मृदङ्गाकार § भूमि में निवास से पत्नी की मृत्यु - विवाह सम्बन्ध का विच्छेद तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी हानि होती है ।

§ 4 §      कुम्भाकार में निवास करने से कुष्ठ रोग होने का वर्णन है ।

§ 5 §      धनुष के आकार की भूमि में निवास से चोरी का भय होता है ।

§ 6 §      अवत्लाकार भूमि में निवास करने से नेत्र रोग होता है, तथा सन्तान दृष्टिहीन होती है ।

§ 7 §      सतम्भ के आकार की भूमि पर निवास करने से सम्बन्ध विच्छेद तथा सम्बन्धियों की मृत्यु होती है ।

§ 8 §      किसी भी निर्मित वास्तु में यदि कुँआ, तालाब, नलकूप, आदि दक्षिण पूर्व § अग्नि § में हो तो पुत्र की मृत्यु तथा भय होता है। यदि जल स्त्रोत दक्षिण में होता है तो पत्नी की मृत्यु तथा विनाश होता है । यदि दक्षिण पश्चिम में जल स्त्रोत हो तो मृत्यु, व्याधि, बीमारी, तथा गरीबी होगी । उत्तर - पश्चिम



कौटिलि उदि केवलम विमर्श मीरु गङ्गाधर , मीरु गङ्गाधर ॥१॥

ई मीरु मीरु मीरु मीरु गङ्गाधर मीरु , ई मीरु मीरु मीरु ॥२॥

ई मीरु मीरु मीरु मीरु गङ्गाधर मीरु , ई मीरु मीरु मीरु ॥३॥

मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु ॥४॥

मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु ॥५॥

ई मीरु मीरु मीरु ॥६॥

मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु ॥७॥

ई मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु ॥८॥

ई मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु ॥९॥

ई मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु ॥१०॥

मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु ॥११॥

ई मीरु मीरु मीरु मीरु ॥१२॥

मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु ॥१३॥

ई मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु ॥१४॥

मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु ॥१५॥

ई मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु ॥१६॥

मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु ॥१७॥

मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु मीरु ॥१८॥

मीरु - मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु , मीरु ॥१९॥



में होने से मृत्यु तथा शास्त्रों में घाति होती है । तथा जल  
स्त्रोत की स्थिति यदि मध्य में होगी तो विनाश हो जाता  
है ।

१११ किसी भी वास्तु में निर्धारित पदों के विपरीत यदि दक्षिण  
में द्वार होता है तो विनाश होता है । यदि पश्चिम में द्वार  
होता है तो गरीबी होती है, इसी प्रकार यदि उत्तर-पूर्व  
में द्वार होता है तो न विवाह न बच्चे होते हैं ।

द्वारों के विषय में शास्त्रों में वर्णन है -

अनिलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनता नरेन्द्र वाल्लभ्यमा ।

क्रोधपरतानृतत्वं क्रौर्यं चौर्यञ्च पूर्वेण ॥

अर्थात् - शिखी में द्वार से वायु का भय, पर्जन्य के द्वार से कन्या लाभ,  
जयन्त के द्वार से धनलाभ, इन्द्र में द्वार से राजप्रियता, सूर्य  
में द्वार से क्रोध, सत्य में द्वार से असत्यता, भृश में द्वार से क्रूरता  
तथा आन्तरिक्ष पद में द्वार से चोर का भय होता है । पूर्व मुखी  
द्वारों के फल इस प्रकार से हैं ।

इसी प्रकार दक्षिण में द्वार के सन्दर्भ में -

अल्पसुखत्वं प्रहृष्यं नीचत्वं भयपानसुखवृद्धिः ।

रौद्रं कृतधनमधनं सुतवीर्यधनं च याम्येन ॥

ग्रन्थ - बृहत्संहिता







अर्थात् -

दक्षिण में अन्निल पद में द्वार से पुत्रों की संख्या में कमी, पूषाशा में द्वार से दास वृत्ति, वितथ में नीचता, गृह्णात में भक्षयपान, पुत्र वृद्धि, याम्य में द्वार से अशुभ, गन्धर्व में द्वार से कृतधन, भृङ्ग राज में द्वार से धनहीनता, स्मृग में द्वार से बल का नाश होता है । ये दक्षिण द्वार के फल कहे गये हैं ।

पश्चिम द्वार के सन्दर्भ में :-

सुतपीडारिपुवृद्धिर्नसुतधनाप्तिः सुतार्थफलसम्पत् ।

धन सम्पन्नपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ॥

अर्थात् -

पश्चिम दिशा में पितृ नाम पद पर द्वार बनाने से पुत्र को कष्ट, दौवारिक में शत्रु वृद्धि सुग्रीव में द्वार बनाने से धन, पुत्र की हानि, कुसुमदन्त में द्वार बनाने से पुत्र, धन तथा फल मिलता है वरुण में धन-सम्पत्ति, असुर में राज्य भय, शोष में धन नाश, पापयक्ष्मा में द्वार बनाने से रोग का भय होता है ।

इसी प्रकार से उत्तर दिशा में द्वार बनाने पर -

वधवन्धो रिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तगुण सम्पत् ।

पुत्रधनाप्तित्वैर सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम् । ।

---

ग्रन्थ - बृहत्संहिता







अर्थात् -

उत्तर दिशा में रोग नामक द्वार से बन्धन, शोध में द्वार से रिपुवृद्धि, मुख्य से पुत्र धन लाभ, भल्लाट द्वार से सद्गुण, सम्पत्ति, समि में द्वार से पुत्र-धन लाभ, भुजंग में द्वार से पुत्र वैर, आदित्य में द्वार से स्त्रीजन्म दोष तथा दिति में द्वार से निर्धनता होती है ।

दिशाओं के अनुसार आन्तरिक नियोजन -

विभिन्न प्रकार के वास्तु पदों, उनके देवता एवं उन देवताओं के अस्त्र-शस्त्र, आयुध परिधान आदि के बारे में विस्तार से चर्चा के उपरान्त यह भी स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि विभिन्न दिशाओं आदि के अनुसार देवता विशेष की स्थिति के अन्तर्गत आन्तरिक नियोजन किस प्रकार से होगा ।

जिस प्रकार से ऋग्वेद में विभिन्न प्रयोजन विशेष हेतु विशेष मंत्रों का विधान दिया गया है, ठीक उसी प्रकार से वास्तु पद विन्यास में भी विभिन्न देवताओं का स्थान विशेष उस विशेष नियोजन हेतु होता है, जो कि उस देवता की ऊर्जा से सम्बन्धित है ।

श्लोक -

ईशान्यां देवता गेहं पूर्वस्या स्नान मंदिरम् ।

आग्नेयां पाक सदनं भण्डारागारमुत्तरे ॥ 94 ॥

---

ग्रन्थ - विश्वकर्म प्रकाश । अध्याय - 2, पृ. सं. 17, श्लोक 94







श्लोक :-

आग्नेय पूर्वयोर्मध्ये दधिमन्थनमंदिरम् ।

अग्निप्रेतेशयोर्मध्ये आज्यगेहं पशस्यते ॥ 95 ॥

याम्य नैऋत्ययोर्मध्ये पुरीषत्यागमीन्दरम् ।

नैऋत्याम्बपयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य मंदिरम् ॥ 96 ॥

पश्चिमानिलयोर्मध्ये रोदनार्थं गृहं स्मृतम् ।

वायव्योत्तरयोर्मध्ये रतिगेहं पशस्यते ॥ 97 ॥

उत्तरीशान योर्मध्ये औषधार्थं तु कारयत् ।

नैऋत्यां सूतिकागेहं नृपाणां भूर्तिमिच्छताम् ॥ 98 ॥

आसन्नप्रसवे मासि कुर्याच्चैव विशेषतः ।

तद्वत्प्रसवकाले स्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥ 99 ॥

अर्थात् -

इस श्लोक से स्पष्ट है कि ईशान दिशा में देवतागृह, पूर्व में स्नान का मंदिर, अग्निकोण में पाक का स्थान और उत्तर में भण्डारों का स्थान बनवावे। अग्नि और पूर्व के मध्य में दधि मथने का मंदिर अग्नि और दक्षिण के मध्य में घृत का घर श्रेष्ठ कहा है। दक्षिण और नैऋत्य के मध्य में मूल के त्यागने का स्थान और नैऋत्य और पश्चिम के मध्य में विद्या के अभ्यास का मंदिर बनवावे। पश्चिम और वायुकोण के मध्य में रोदन का घर कहा है। वायु और उत्तर के मध्य में रति भोग का घर श्रेष्ठ कहा गया है। उत्तर

---

ग्रन्थ - विश्वकर्म प्रकाश । अध्याय - 2, पृ. सं. 17, श्लोक सं. 95 से 99







और ईशान के मध्य में औषध का स्थान बनवाये और भूति के अभिलाषी राजाओं को सूतिका का घर नैऋति दिशा में कहा है । यह विशेषकर प्रसव काल के समीप में करना चाहिए यह शास्त्रों में कहा है । जिस प्रकार से विश्वकर्मा प्रकाश के श्लोक से स्पष्ट होता है कि घरों में दिशाओं के अनुसार आन्तरिक नियोजन किस प्रकार से किया जाता है, ठीक उसी प्रकार से राजमहल में भी आन्तरिक नियोजन दिशाओं के अनुसार किस प्रकार से किया जाता है । यह अग्नि पुराण के इस श्लोक से स्पष्ट है -

श्लोक -      पूर्वायां ऽर्वास्यां ऽ श्री गृहं प्रोक्तभाग्नेय्यां वै महानसम् ।  
 शयनं दक्षिणास्यां तु नैऋत्यामायुधाश्रयम् ॥ १८ ॥  
 भोजनं पश्चिमायां तु वायव्यां धान्य संग्रहः ।  
 उत्तरे द्रव्य संस्थानमैशान्यां देवतागृहम् ॥ १९ ॥

अर्थात् -

श्लोक से स्पष्ट है कि राजमहल में पूर्व की ओर कोशागार, दक्षिण पूर्व की ओर पाक शाला, दक्षिण की ओर शयनकक्ष, दक्षिण पश्चिम की ओर अस्त्रागार, पश्चिम की ओर भोजनालय, पश्चिमोत्तर की ओर धान्यागार, उत्तर की ओर द्रव्यागार तथा पूर्वोत्तर की ओर देवालय का निर्माण करना चाहिए ।

॥ १० ॥      यदि किसी निर्मित वास्तु के मुख्य द्वार के सामने अमंगलकारी अवरोध होते हैं तो वह अशुभ है, जिनमें से मुख्य अवरोध इस प्रकार से हैं :-







१०१

यदि मुख्य द्वार के सामने वृक्ष हो तो बच्चों के लिए हानि-कारक होता है, यदि खम्भा या स्तम्भ हो तो महिलाओं में दुर्बलता हो जाती है । यदि रास्ता जाता हो तो गृह स्वामी की मृत्यु हो जाती है । और यदि प्रवेश द्वार पर किसी भी प्रकार की छाया पड़ती है तो उस स्थान पर खाधान्न की कमी होती है, बीमारी तथा झगड़ा होता है । यदि मुख्य द्वार के सामने मूर्ति या कोई प्रतिमा हो तो गृह स्वामी का विनाश होता है । यदि कीचड़ हो तो विपत्ति होती है । नाला हो तो व्यय का संयम नहीं रहता, यदि कुआँ हो तो मिर्गी हो जाती है ।

१०२

यदि द्वार स्वतः खुल जाता हो तो पागलपन तथा मानसिक असन्तुलन, यदि स्वतः बन्द होने वाला हो तो परिवार का विनाश हो ता है । यदि द्वार तेज अप्रिय आवाज करता हो तो उससे गर्भपात तथा विपत्ति होती है । यदि द्वार अत्यधिक बड़ा हो तो दैवीय प्रकोप, तथा अत्यधिक छोटा होता है तो चोरों से खतरा तथा पीड़ा है । यदि द्वार के ऊपर एक बना होता है तो सुख का नाश होता है तथा अशान्ति होती है । यदि द्वार सतह से अन्दर की ओर झुका हो तो घर से वंचित रहना पड़ता है । यदि सतह से नीचे की ओर झुका हो तो गृह स्वामी के लिए विपत्तिकारक होता है । यदि अत्यधिक चौड़ा द्वार हो तो भुखमरी होती है । इस प्रकार से घर की स्थितियाँ होने से अशुभत्व होता है ।







§ 12 §

भवन यदि आधार विहीन या लघु आधार वाला है तो वहाँ पर सौन्दर्य का नाश होता है, तथा हानि होती है। यदि भवन के ब्रह्म स्थान के ऊपर खम्भा या दीवार होती है तो परिवार के ऊपर विपत्ति जाती है। यदि घर ब्रह्म स्थान से रहित होता है तो प्राकृतिक नियमों के सहयोग कम मिलता है, तथा पृथ्वी पर वर्षा की कमी तथा गृह के मालिक के लिए मृत्यु कारक है। यदि, भवन दुर्गन्धमय है तो पुत्र की मृत्यु का योग होता है। यदि दिग्विन्यास उपर्युक्त नहीं है तो सन्तान नहीं होती है। यदि नये भवन में पुरानी नयी व पुरानी सामग्रियों का उपयोग निर्माण हेतु होता है तो परिवार में कलह होता है। यह सब अशुभ भवन के लक्षण हैं।

§ 13 §

भवन की आन्तरिक सतह के लिए कुछ अशुभ ढलान होती है, जैसे - पूर्व की ओर नीचे की ढलान हो तो मित्रों से बैर, दक्षिण की ओर नीची ढलान हो तो मृत्यु का भय, पश्चिम की ओर हो तो सम्पत्ति की हानि। उत्तर की ओर नीची ढलान हो तो मानसिक पीड़ा होती है।

§ 14 §

यदि भवन के बायीं ओर अशुभ बरामदा हो तो वित्तीय हानि होती है। यदि बरामदा पीछे के भाग में हो तो भवन के घर के स्वामी की मृत्यु होती है। यदि भवन ऐसा बना हो कि उसका छज्जा वर्षा के पानी से भवन को सुरक्षित न रख सके तो उस घर में सफलता की सभी सम्भावनाएँ खत्म हो जाती हैं।







§ 15 §

यदि भवन की सीढ़ियाँ अशुभ हैं तो गृह स्वामी का विनाश होता है । सीढ़ियों की संख्या सम होना अशुभ होता है । तथा उमर जाने की स्थिति में यदि सीढ़ियाँ बाँयीं ओर मुड़ी हों तो भी अशुभ है ।

§ 16 §

यदि घर की चिमनी अत्यधिक बड़ी या छोटी होती है तो उदर सम्बन्धी रोग हो जाता है । यदि दीवार निर्माण में प्रयोग होने वाली सामग्री के घटक ज्यादा बड़े या ज्यादा छोटे हो तो चोरी द्वारा सम्पत्ति की हानि होती है ।

§ 17 §

यदि जाली ज्यादा बड़ी होती है तो सन्दर्भ व सम्बन्धित की हानि होती है तथा यदि अत्यधिक छोटी होती तो भी यही फल होता है ।

§ 18 §

यदि गुम्बद ज्यादा बड़ा या छोटा हो तो गरीबी होती है, यदि खिड़कियाँ या अटारी ज्यादा बड़ी या छोटी हो तो रोग होता है । यदि मंदिर का गर्भगृह ज्यादा बड़ा या छोटा है तो उस बस्ती का विनाश हो जाता है । यदि सीढ़ियाँ ज्यादा बड़ी या छोटी हैं तो घर का स्वामी विकलांग हो जायेगा ।

§ 19 §

यदि घर के नजदीक कटीले वृक्ष होते हैं तो राजाओं से भय होता है । यदि फलदार वृक्ष हो तो बच्चों की मृत्यु होती है, और यदि दूध वाले वृक्ष हो तो सम्पत्ति की हानि होती है ।







॥ 20 ॥

यदि घर का मार्ग आयुध शाला की ओर हो तो खतरा होता है । और यदि मार्ग चारों ओर हो तो अमंगलकारी होता है । तथा आवास के लिए भी उपयुक्त नहीं होता है ।

:: दोष निवारण ::  
=====

इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि ये कुछ प्रमुख वास्तु दोष तथा उनसे होने वाले परिणाम हैं :-

इसके पश्चात् हम देखेंगे कि इन सभी वास्तु दोषों के परिणामों का शोधन हमें किस प्रकार से मंत्रों यज्ञों आदि के द्वारा वैदिक वाङ्मय में मिलता है, जो विषयों के अन्तर्सम्बन्ध को ज्ञेयता विज्ञान व स्थापत्य वेद के स्पष्ट करने में सहायक होगा - वे मंत्र इस प्रकार से हैं :-

॥ 1 ॥

मेघा की कामना वाले मनुष्य को नित्य "सदस स्पति" आदि तीन ऋचाओं का जप करना चाहिए ।

॥ 2 ॥

बन्धन में पड़े हुए व्यक्ति "शुनः शेषमृषिम" आदि सूक्त का जप करना चाहिए । इस जप से निरोग होता है तथा सभी पापों से मुक्ति मिलती है ।

॥ 3 ॥

जो व्यक्ति अनन्त कामनाओं, वृद्धि, तथा इन्द्र की मित्रता चाहता हो उसे "नित्य" इन्द्र स्येति" आदि सर्वाहो ऋचाओं का जप करना चाहिए ।

॥ 4 ॥

यथे ते पन्था" इत्यादि मंत्र के जप से मार्ग में सुरक्षा होती है ।







§ 5 §

जो व्यक्ति "उदित" इत्यादि ऋचा से उदय कालीन सूर्य का नित्य प्रति अनुष्ठान करते हुए सात अंजलि जल अर्पण करता है, उसकी मनोव्यथा दूर हो जाती है ।

§ 6 §

आरोग्य की कामना करने वाला को "पूषकर्षा स्योभयम्" इत्यादि ऋचा का जप करना चाहिए । इसी ऋचा के अन्तिम अर्धांश का जप करने से शत्रु का नाश होता है ।

§ 7 §

सूर्योदय में "पूषकर्षास्योभयम्" इस ऋचा का जप करने से आयु अक्षय होती है, तथा मध्याह्न में करने से तेज की प्राप्ति होती है । तथा सूर्यास्त ही जाने पर इस का जप करने से शत्रु का नाश होता है -

§ 8 §

"न वयश्च । इत्यादि सूक्तों का जप करने से मनुष्य शत्रुओं को अपने वश में कर लेता है ।

§ 9 §

"आ नो भद्राः" । इत्यादि मंत्र के जप से दीर्घायु होती है ।

§ 10 §

शुचिता पूर्वक तीन रात उपवास करके "मानस्तोक इत्यादि दो ऋचाओं को पढ़ते हुए घी डुबोई हुई गूलर की समिधाओं से हवन करने से मनुष्य सभी मृत्यु पाशों को काट कर निरोगी हो जाता है ।

§ 11 §

"मानस्तोक" इस मंत्र को भुजाओं को ऊपर उठाकर शम्भु की स्तुति करने बंधने से मनुष्य अजेय हो जाता है ।







§ 12 §

"चित्रम" इत्यादि मंत्र से तीनों काली हाँथ में कुछ लेकर सूर्य स्तुति करने से मनुष्य अभीष्ट धन की प्राप्ति कर लेता है ।

§ 13 §

पितः इत्यादि मंत्र का जप करने से नित्य अर्थ लाभ होता है।

§ 14 §

"विश्वानि न" इत्यादि दो ऋचाओं से अग्नि की पूजा करने से सभी प्रकार के विपत्तियों से छुटकारा पाकर अक्षय यश, विपुल सम्पत्ति तथा श्रेष्ठ विजय की प्राप्ति होती है ।

§ 15 §

"नहि" इत्यादि ऋचाओं के जप करने से महाभय दूर होता है ।

§ 16 §

कन्या वाः सूक्त का जप करने से दिशा का दोष नहीं लगता है।

उपर्युक्त मंत्रों, सूक्तों, ऋचाओं के प्रयोगों के द्वारा वास्तु दोष से होने वाले परिणामों को रोका जा सकता है ।

इसी प्रकार से यज्ञों, द्वारा भी दोषों को दूर किया जा सकता है जैसे - यजुर्वेद के अनुसार ओंकार पूर्वक महाव्याहृतियों §भिः भुवः स्वः§ मानी गई है । ये सभी पापों का नाश करने वाली तथा सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाली है । बुद्धिमान मनुष्य को एक हजार आज्ञाहृतियों से देवताओं की आराधना करनी चाहिए । इस प्रकार से किया हुआ यज्ञ कर्म अभिलाषाओं तथा कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है । इसी यज्ञ को शान्ति की कामना करने वाले को जी से करना चाहिए तथा पाप के नाश के लिए तिल से करना चाहिए।

"तनुनपाग्नेसत" इत्यादि मंत्र को पढ़कर दूर्वा की आहुति देने से दुःखों का नाश करता है ।

"अम्बकं यजामहे" इत्यादि मंत्र से किया गया हवन सौभाग्य,







"दीर्घकाम्यार्णो" इत्यादि मंत्र से आहुतियों देने से पुत्र की प्राप्ति होती है ।

"धृतवती" इस मन्त्र को पढ़कर दी गई घी की आहुति दीर्घ आयु की प्राप्ति कराती है ।

इस प्रकार से आनेकों यज्ञों द्वारा आहुतियों द्वारा यज्ञ विधान से भी वास्तु के दोषों का शमन सम्भव है, जिसका वर्णन यजुर्वेद में मिलता है ।

इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न यज्ञों, मंत्रों, आहुतियों, गानों आदि के द्वारा वास्तु, के अनेकों दोषों को दूर किया जा सकता है । जिनका वर्णन वैदिक वाङ्मय के विभिन्न क्षेत्रों में मिलता है ।

इस प्रकार वैदिक वाङ्मय अर्थात् चेतना विज्ञान व स्थापत्य वेद में महत्वपूर्ण अन्तर्सम्बन्ध स्थापित होता है ।

--xx--







उपसंहार :-

अपूर्वतम अर्थव्यवस्था है जो कि अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत है।  
 धन का विज्ञान अर्थात् धन के विज्ञान का अर्थ है धन के विज्ञान का अर्थ है  
 धन का विज्ञान का अर्थ है धन के विज्ञान का अर्थ है धन के विज्ञान का अर्थ है  
 धन का विज्ञान का अर्थ है धन के विज्ञान का अर्थ है धन के विज्ञान का अर्थ है  
 धन का विज्ञान का अर्थ है धन के विज्ञान का अर्थ है धन के विज्ञान का अर्थ है  
 धन का विज्ञान का अर्थ है धन के विज्ञान का अर्थ है धन के विज्ञान का अर्थ है

देवताओं की स्तुति

को पुनर्जाति देने

उ प संहार -

मनुष्यों में स्वार्थों का नाश मात्र है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है  
 धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है  
 धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है  
 धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है  
 धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है  
 धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है  
 धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है  
 धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है  
 धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है  
 धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है धर्म का अर्थ है

गौतम बुद्ध की स्तुति

उत्तमो देव योनि, मातुं योनि, तस्यै नमः



Digitized by  
Siddhanta eGangotri  
Gyaan Kosha



उपसंहार :-  
=====

उपर्युक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्थापत्यवेद व चेतना विज्ञान अर्थात् वेद विज्ञान का अन्तर्सम्बन्ध दर्शाने के लिए वेद विज्ञान - चेतना विज्ञान का स्त्रोत उसका सृजन व विस्तार प्रकृति व विकृतियों व ब्रह्म से शैवाल का उस आवश्यक चेतना का प्राकट्य यह स्पष्ट करता है, कि विशुद्ध शान्त चेतना ही विभिन्न रूपों में व्यक्त हुई है, जिसका वर्णन हमें समस्त चेतना विज्ञान के अनुसार वैदिक वांगमय में मिलता है ।

ऋग्वेद में अग्नि की स्तुति व समस्त वैदिक वांगमय में विभिन्न देवताओं की स्तुति उनके गुण व विशेषतः को दर्शाती है, तथा उसी उर्जा विशेष को पुनर्सर्जित धन अर्थात् उस देव विशेष को प्रसन्न अर्थात् जागृत करने के लिए शब्दों में ऋचाओं का पाठ साम में गायन यजुर्वेद में यज्ञादि तथा अथर्ववेद में भिन्न दूनियार कर्मों का प्रयोग किया गया है । महर्षि स्थापत्य वेद एवं चेतना विज्ञान के अन्तर्सम्बन्ध के स्थापन को स्पष्ट रूप से व्याख्यायित करने के लिए सृष्टि के क्रम एवं उसमें वैदिक वांगमय चेतना विज्ञान या महर्षि स्थापत्य वेद के अन्तर्सम्बन्ध को समझना आवश्यक है जो निम्न-लिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है :-

चौदह प्रकार की सृष्टि -

चौदह प्रकार का सृष्टि का जो क्रम वैदिक वांगमय में प्राप्त है, उसको देव योनि, मानुष योनि, तिर्यक योनि एवं स्थावर इन चार भागों में







विभक्त कर सकते हैं, अब हमें इसको अब स्थापत्यवेद की दृष्टि से देखते हैं,  
तो निम्न बिन्दुओं द्वारा उन्हें स्पष्ट किया जा सकता है ।

१।१

देव योनि या देव सर्ग १ आठ प्रकार का देव सर्ग " १ -

इसमें वास्तु पुरुष के ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं की  
लिया जा सकता है ।

इनका पूजन का मंत्र वेदों में उपलब्ध है तथा इनकी  
निम्न पूजन विधि हेतु पदार्थों का वर्णन स्थापत्य वेद के बलिकर्म  
में वर्णन है । जिनके द्वारा यदि स्थापत्य वेद के अनुसार निर्माण  
में कोई कमी है तो उसे चेतना के अन्य स्पन्दनों या चेतना विज्ञान  
के अन्य पक्षों द्वारा दूर किया जा सकता है । उदाहरार्थ - यदि  
वास्तु पुरुष का कोई अंग दूषित है, या कटा है या फिर निर्माण  
उचित नहीं है तो उसे यज्ञा द्वारा मंत्रों द्वारा या बलिकर्म के  
पदार्थों द्वारा पूरित किया जा सकता है ।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि यदि स्थापत्य  
के किसी भी अंग को लेगे तो चेतना विज्ञान के अन्य क्षेत्र भी उसी  
से समानता रखते हुए उसके पूरक के रूप में वर्णित हैं । जिनसे कि  
किसी भी विषय को सम्पूरा प्रदान की जा सकती है । अथवा  
स्थापत्य वेद के किसी एक क्षेत्र या वास्तु शास्त्र के विपरीत  
निर्माण को वास्तु शास्त्र के अनुरूप करने हेतु चेतना विज्ञान या  
बैदिक वागमय में वर्णित उस वास्तु पुरुष के अंग विशेष के अंग  
दूषण को समाप्त करने के लिए उस स्थान के देवता से सम्बन्धित







मंत्र, बलि सामग्री {अन्य आदि} वनस्पति, रत्न आदि द्वारा जो कि उस देवता विशेष को प्रसन्न करने के लिए है, उसके द्वारा उसी विधोपक ऊर्जा {पाजिटिव ऊर्जा} को उत्पन्न कर उस वास्तु दोष को दूर किया जा सकता है ।

जैसे - वैदिक वाग्मय में अनेकों मंत्र के द्वारा स्पष्ट किया गया है- एकाक्षरी कोश के सभी मंत्रों के विषय में अग्नि पुराण के अनुसार - यह एकाक्षर यंत्र साक्षात् देवता रूप तथा भोग और मोक्ष देने वाला होता है ।

{ अग्नि पुराण अध्याय 348-131 }

इसी प्रकार से ऋग्वेद के - कन्यावाः इस सूक्त का जाप करने से दिशा दोष नहीं लगता है । अतः यदि किसी भी प्रकार का दिशा दोष होता है तो इस मंत्र का जाप करना चाहिए । ऋग्वेद के मंत्रों के उपयोग का यह वर्णन जैसा कि अग्निपुराण के अध्याय 259, में वर्णित है । जब स्थापत्य वेद के अनुसार निर्माण में किसी भी प्रकार की कमी रह जाय उससे अग्नि का भय हो तो निम्न मंत्र का जाप करने से मुक्ति होती है -

अथमग्नेजरि.

{ अग्निपुराण अध्याय 259,  
87/90 }

यदि निर्माण कार्य में वास्तु पुरुष का वह अंग दूषित है जिससे सत्रु का भय होता है तो निम्नलिखित मंत्र का पालन करना चाहिए । इन्द्र, सोम इत्यादि सूक्त ।







जब निर्माण में कमी के फलस्वरूप मनुष्य किसी प्रकार के विवाद में फँसा हो तो उसे आदित्य इत्यादि की ऋचा का जाप करना चाहिए । इससे वह विजयी होता है ।

अध्याय - 259/68

यदि वास्तु दोष के कारण घर में अशान्ति उत्पन्न हो गई है, तो §शं नो मित्र§ इस मंत्र का जप करना चाहिए । इससे सदा शान्ति रहती है ।

यदि किसी प्रकार के वास्तु दोष से मनःस्थिति अच्छी न हो तो "उदिति" इत्यादि ऋचा से उदय कालीन सूर्य नित्य प्रति अनुष्ठान करते हुए जो व्यक्ति सात अंजलि जल अर्पण करता है, उसकी मनोव्यथा दूर हो जाती है । §यज्ञा, अनुष्ठान द्वारा§

वास्तु शास्त्र के अनुसार जब द्वार दोष होता है, तो स्त्रियों का गर्भ नष्ट हो जाता है, इस प्रकार के दोष को दूर करने के लिए "अर्वाध्याग्नि" इत्यादि मंत्र पढ़कर विधिपूर्वक घी से हवन करना चाहिए, तत्पश्चात् मेखला बंधन करने के लिए अवशिष्ट घी को मेखला पुर छिड़क कर उसे उन स्त्रियों को बाँध देना चाहिए, तदन्तर बालक के जन्म देने पर तब उसे भी "शौर्म राजानम्" इत्यादि मंत्र पढ़कर मणि §मेखला§ बाँध देनी चाहिए । इससे सभी व्याधियों से मुक्ति हो जाती है । यज्ञा, अनुष्ठान द्वारा सामवेद के मंत्रों के उपयोग का यह वर्णन अग्नि पुराण के अध्याय 261/7, में मिलता है ।







उपर्युक्त मंत्रों के द्वारा तथा उनसे विभिन्न वास्तु दोषों की निवारण विधि द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है, कि जैसा कि उपर्युक्त शीर्षक का प्रयोजन है कि स्थापत्य वेद - व चेतना विज्ञान व उसके चैतन्य स्पन्दन § वेद व उनके मंत्र§ का कितना गहरा सम्बन्ध है ।

मानुषी सृष्टि § एक प्रकार की §  
=====

मानुषी सृष्टि के अन्तर्गत मनुष्य तथा उसके गृहों आदि की स्थिति ले सकते हैं । मनुष्य का उसके गृहों से अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है । उन्हीं गृहों की दशा, अन्तर्दशा, आदि पर ही मनुष्य जीवन आधारित है, इनकी जानकारी चेतना विज्ञान, के अंग ज्योतिष शास्त्र में मिलती है, एवं इन्हीं गृहों से सम्बन्धित मंत्रों आदि का वर्णन भी ज्योतिष शास्त्र में मिलता है । इस प्रकार से प्रत्येक दिशा का देवता एक है देवता का एक गृह से सम्बन्ध है, और उस दिशा के दोषी होने पर ग्रह विशेष की पूजा द्वारा उसे पूरित किया जा सकता है, जो चेतना विज्ञान और स्थापत्य वेद के अन्तर्सम्बन्ध को प्रकट करता है जैसे -

पूर्व	-	सूर्य
अग्नेय	-	शुक्र
दक्षिण	-	मंगल
नैऋत्य	-	राहु
पश्चिम	-	शनि
वायव्य	-	सोम
उत्तर	-	बुध
एशान्य	-	वृहस्पति







तिर्यक सर्ग या तिर्यक सृष्टि षोडश प्रकार की -

=====

इसमें वास्तु शास्त्र के विभिन्न बलिकर्मों, गर्भगृहविन्यास आदि के अन्तर्गत होने वाले विभिन्न अनुष्ठानों कर्मकाण्डों आदि का स्थावर आदि जो तमः प्रधान सृष्टि है, उनसे अन्तर्सम्बन्ध को स्पष्ट किया जा सकता है -

उदाहरणार्थ स्थापत्य वेद के अन्तर्गत यदि किसी प्रकार का वास्तु दोष है तो उसे बलिकर्म विधान द्वारा दूर किया जा सकता है जैसा कि-

गृह में "शं नो वनस्पते" इत्यादि मंत्र से हवन करने पर वास्तु दोष दूर हो जाते हैं। अग्नि पुराण - अध्याय - 260/62१ में इसका वर्णन मिलता है। "मैषज्यगण" मंत्रों से आहुति देकर मनुष्य रोगों से मुक्त होता है। अ. 262-2१ इससे स्पष्ट होता है कि वे मंत्र तथा वे समागियों जो इस हवन में प्रयोगलायी गईं उनसे जब तक स्थापत्य वेद का स्थावर सृष्टि की अन्तर्सम्बन्ध नहीं होगा तो उसके द्वारा उस दोष का शमन सम्भव ही नहीं है। अतः इस सभी षोडश प्रकार की सृष्टि के पदार्थों, प्रशियों आदि का निश्चय ही स्थापत्य से एक पूरक का सम्बन्ध है जैसे -

यक्षीय वृक्षों की मुख्य समिधा में मुख्य छवि है, अयो. भार्गव। घृत, प्रोदित, ३ उनका सरसो, अक्षत, लि, दही, दूध, कुश, दूवी, विन्वेपत्रव, में द्रव्य शांति तथा पुष्टि के कारक हैं अ. 262/22-23. इसी प्रकार से स्थापत्य वेद में प्रत्येक देवता की अलग - अलग दिशा विशेष है तथा वेदांग ज्योतिष शास्त्र के अनुसार प्रत्येक दिशा का एक रत्न है, अतः जब स्थापत्य में निर्माण किसी दिशा की समीप रह जाती है तो उसे ज्योतिष द्वारा बताये गये उस दिशा के रत्न द्वारा पूरित किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि ज्योतिष शास्त्र ज्योतिष विज्ञान का अंग का स्थापत्य वेद से किना गहरा सम्बन्ध है।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur MP Collection



उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है, कि स्थापत्य वेद व  
चेतना विज्ञान अर्थात् वैदिक वांगमय के विभिन्न क्षेत्र आपस में कितने घनिष्ट  
रूप से अंतर्सम्बन्धित हैं, तथा एक दूसरे को पूर्णतः पुष्ट करते हैं ।

---xx---



॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥  
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

—X—



स्थापत्य वेद वास्तु शास्त्र का वैदिक वर्णमय के अन्य क्षेत्रों से अन्तर्सम्बन्ध किस प्रकार से सम्भव है, यह इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि जैसे वास्तु पुरुष में अलग-अलग दिशाएँ होती हैं, उसी प्रकार उन दिशाओं के अलग-अलग होते हैं, जिनके दोष युक्त होने पर हम उन्हें रंगों, रत्नों, सम्बन्धितकारक तत्वों, वैदिक मंत्रों, पौराणिक मंत्रों तथा दान की वस्तुओं के द्वारा दूर कर सकते हैं, जिससे विभिन्न वैदिक वर्णमयों से स्थापत्य वेद का अन्तर्सम्बन्ध स्पष्ट होता है,।

उपर्युक्त तथ्य निम्नलिखित चार्ट द्वारा स्पष्ट है :-

क्र.	दिशा	गृह	रंग	रत्न/धातु	सम्बन्धित कारक तत्व	वैदिक मंत्र	दान की वस्तुएँ
1.	पूर्व	सूर्य	नारंगी	माणिक्य	आत्मा, पिता, राजा, हड्डी, हृदय, पेट, धनाद्यलोग, आग, उनाला, राज्य आदि ।	आकृष्येन राजसा.	गुड़, लालवस्त्र, रत्न, रक्त, चन्दन, ताम्र, गेहूँ, माणिक्य, सर्वभूतार्थ, अलंकार

2.	उत्तर-पश्चिम	चन्द्र	श्वेत	मोती, चोँदी	माता, मन, राज्ञी, रक्त, अँख, भेकड़, छाती, जनता, स्मरण शक्ति आदेश, कामनाएँ पानी,	इम देवा.	श्वेत वस्त्र, कपूर, बोंस के पात्र में चावल, धी से भरा हुआ, चोँदी, मोती, दही, शर्ष, वृषभ
----	--------------	--------	-------	-------------	---	----------	---







3. दक्षिण मील - भूगा  
वीरता, रूपा विभुता अनिमूर्धा  
पुरुषार्थ, सिसर, पटले, दिव,  
अण्डकोष, धर्म, हड्डी,  
चातुर्य  
कबेर का फूल लाल  
गेहूँ, रक्ता, ताप, गुह,  
भूगा, लालवस्त्र, रक्त  
बैल, मसूर एवं रक्त  
चंदन ।

4. उत्तर भूध हरा तीनों धातु, कलई धातु,  
वापी, बालक, दयापारी, उदुब्ध  
सुख की नली, बुद्धि, येतना स्वाने.  
अन्तर्द्विधा, त्वचा, मामा,  
नपुंसकत्व, लिखना, पढ़ना-  
मजाक - खेलकूद ।  
भेड, हरा पुरुष, हथोथी  
दाल, सोना, नीलावस्त्र  
दासी, पन्ना, कौसपात्र,  
मैल, धी ।

5. उत्तर-पूर्व बृहस्पति पीला पुष्कराज  
राज्यकृपा, ज्ञान, बडप्पन, वृहस्पतेऽन्त  
गौरव, धन-दौलत, बडासगां, यद्यो.  
भाई, बेटा चर्बी, जिगर,  
वायु, तथा स्थियो की  
कुण्डली में उनकापति ।  
पीला फूल, चना दाल  
पीला वस्त्र, हल्दी, सोना  
लवशा, धोड़ा, एवं  
पुष्कराज शर्करा ।

6. दक्षिण-पूर्व शुक्र - हीरा  
जला, मुख, गुहतेन्द्रिय,  
वीर्य, कामवासना, स्त्री,  
प्रेम, संगित बद्धि, वस्तु  
पसन्द जल ।  
अन्नात्परि  
रञ्जतो.  
उत्तम पुरुष, पावल, कपूर,  
सोना, चोटी, हीरा  
धूल, गी, वेत, चित्र  
विचित्र रंग का कपड़ा







7. परिचय

शनि

काला

लोहा

ढंढक, नपुंसकत्व, स्त्री लिंग,  
पत्थर, नीच, नौकर, टोंगका  
रमिरुग्ध.  
झींच काला तथा निचला भाग,  
नीच, रुकावट, अन्धकार,  
विष पृथक्ता, दीर्घ प्रभाव,  
अभ्युपगोत, बैरागी, दार्शनिक,  
योगी, वायु रनायु अभावात्मक,  
तेल, चमड़ा, पेट्रोल

काला फूल, कमल,  
तिल, काला कण्टा,  
काली गद्दी, उड़द  
नीलम, कुन्धी, तेल,  
शैल ।

8. नैऋत्य

राहु

-

नोट :-

शरीर के अवयवों को छोड़कर प्रायः वे सब गुण दीध राहु में होते हैं,  
जो शनि में होते हैं - रत्न नीलम । मंत्र- कयानविघ्न । दान सामग्री  
तिल, कमल, काला वस्त्र, गोमेद, लोहा, तेल, घोड़ा, चोट्टी थेंडे उन,

9. ईशान

केतु

-

नोट :-

शरीर के अवयवों को छोड़कर लगभग वे सब गुण दीध केतु में पाये जाते  
हैं, जो शनि में हैं - मंत्र - केतुं कणवन्तकेतवे । दान सामग्री - नील  
फूल, ऊन, बकरा, नमक, कस्तूरी, वैदर्भ, भारद्वाज, तेल, कमल, तिल ।







:: सन्दर्भित ग्रन्थों की सूची ::  
=====

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. सामवेद
4. अथर्ववेद
5. मानसार
6. समराङ्गण सूत्रधार-भवन निवेश
7. अग्नि पुराण
8. मत्स्य पुराण
9. बृहद संहिता
10. बृहज्योतिष सार
11. विश्वकर्म प्रकाश
12. पातंजलि योग प्रदीपिका
13. चेतना
14. वास्तु रत्नावली
15. वास्तु सौख्यम्
16. ह्यूमन फिजियोलोजी वेद एण्ड वैदिक लिटरेचर

---xx---



















